



श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रम्

(श्री ललितस्वच्छन्दतन्त्र से उद्धृत)

हिन्दी टीका सहित समीक्षात्मक संस्करण

भाषानुवादक
प्रो० मखनलाल कुकिलू

ईश्वर-आश्रम ट्रस्ट
इश्वर (निशात), श्रीनगर, कश्मीर

श्री बहुरूपगर्भस्तोत्रम्

(श्रीललितस्वच्छन्दतन्त्र से उद्धृत)

हिन्दी टीका सहित समीक्षात्मक संस्करण

भाषानुवादक

प्रो० मखनलाल कुकिलू

प्रकाशक

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

निशात-श्रीनगर ♦ जम्मू ♦ दिल्ली ♦ मुम्बई

प्रकाशक :

ईश्वर आश्रम ट्रस्ट

श्रीनगर आश्रम

इश्वर, निशात, श्रीनगर (कश्मीर)

जम्मू आश्रम :

2 महेन्द्र नगर

कनाल रोड, जम्मू (तवी) - 180016

दिल्ली आश्रम :

आर - 5, पॉकेट - डी

सरिता विहार, नई दिल्ली - 110076

दूरभाष - 011-2695 8038

© सारे अधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रथम संस्करण : अगस्त 2010

मूल्य - 60 रुपये

मुद्रक :

मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशंस

4225ए, 1 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110 002

अपनी बात

श्रीललितस्वच्छन्दतंत्र से उद्धृत श्री बहुरूपगर्भस्तोत्र का भाषानुवाद सहित समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष हो रहा है।

शास्त्रों में कहा है कि आध्यात्मिक कार्य प्रायः विघ्नबहुल हुआ करते हैं। प्रस्तुत स्तोत्र के भाषानुवाद सहित प्रकाशन में भी आजतक अनेक अप्रत्याशित बाधाओं का सामना करना पड़ा। स्वनामधन्य ईश्वरस्वरूप मेरे सद्गुरु महाराज बार-बार अनुरोध करने पर भी इसकी रहस्यात्मक व्याख्या को सामान्य जनता तक पहुंचाने के पक्ष में नहीं रहे। परिणामस्वरूप आजतक यह कार्य अधूरा ही रहा। रविवासरीय व्याख्यानों में वे कभी-कभी इस स्तोत्र के रहस्यों पर प्रकाश डालकर अनुगृहीत करते थे तथा कभी-कभी सुप्रसिद्ध तीर्थस्थानों पर अपनी शिष्यमण्डली को, इस स्तोत्र की गूढ़ार्थ प्रक्रिया पर प्रकाश डालकर आह्लादित करते थे। एवं समय-समय पर इस स्तोत्र के महत्त्व के विषय में दिये गये अमूल्य संकेतों को गांठ में बांधकर सुरक्षित रखने में मैंने कभी असावधानता नहीं बरती। इस प्रकार सुरक्षित रखे उन अमृतबिन्दुओं से भक्तजनमानस को आप्लावित करने के लिए आतुर मैं बहुरूप गर्भ की समृद्ध परम्परा का व्यापक प्रचार-प्रसार करने को समुत्सुक रहा।



विश्वैक रूप विश्वात्म, विश्वसर्गादि कारणम्।
परप्रकाशवपुषं, स्तुमः स्वच्छन्द भैरवम्॥

३
की पर
अविर
यह वि
के जी
अपितु
सकल
इस म
पाणिन्
गया है
अघोर

इ

म
वाले!

१ घोर
महामन्
ही सम
'घोरतर'
जिसक

बहुरूपगर्भस्तोत्र के विषय में

अनन्त अनन्त ऋषि मुनियों द्वारा दृष्ट एवं रचित स्तोत्र साहित्य की परम्परा नगाधिराज के उत्तुंग शृंगों से बहती आ रही मन्दाकिनी की अविरल धारा की तरह भारत के समस्त प्रान्तों को सींचती आ रही है। यह विशाल स्तोत्र साहित्य जगमगाते दीप की तरह जागरूक साधकों के जीवन को न केवल बाह्यरूप से ही प्रकाशित करता आया है अपितु अन्तर्लोक से भी। प्रस्तुत स्तोत्र भारतीय संस्कृति का प्राण है। सकल कामना पूर्ति में सहायक इस स्तोत्र की महत्ता अनिर्वचनीय है। इस मूर्धन्य स्तोत्र में स्तोत्र परम्परा के अनुसार ही नमः शब्द का पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार, चतुर्थ्यन्त पद के साथ प्रयोग किया गया है। इस स्तोत्र में श्लोकों की संख्या 34 है जो स्वच्छन्द भैरव या अघोर भट्टारक के 34 बीजाक्षरों वाले महामन्त्र से सम्बद्ध है।

महामन्त्र का रहस्य

इस अघोर भट्टारक या स्वच्छन्द भैरव का महामन्त्र इस प्रकार है—

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यश्च।

सर्वतः शर्व सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्र रूपेभ्यः॥

मन्त्र व्याख्या — हे शर्व! अर्थात् हे परभैरव! हे महाभीषण रूप वाले! (कोई आपके सामने ठहर नहीं सकता है और न कोई आपसे

१ घोर घोरतरीभ्यः भी पाठान्तर है जो हमारे सद्गुरुदेव से अनुमोदित है। पर इस महामन्त्र के बीजाक्षरों की व्याख्या में 'री' बीजाक्षर को श्रेय न देकर 'रे' बीजाक्षर को ही समझाया गया है। अतः 'रीभ्यः' के स्थान पर 'रेभ्यः' पाठान्तर दिया गया है। 'घोरतरीभ्यः' पाठान्तर की महत्ता घोर घोरतरी अनन्त शक्तियों से सम्बद्ध है जिसका उल्लेख विस्तृत व्याख्या में किया गया है।

कुछ ऊँचे स्वर में कह सकता है, जो कुछ आप करते हो कोई उसका विरोध नहीं कर सकता है।) आपकी अघोर शक्ति, घोर शक्ति और घोरतर या घोरतरी शक्तियां चारों ओर से व्याप्त हैं, ये सीमित नहीं हैं, मैं आपकी इन अनन्त शक्तियों को प्रणाम करता हूँ जो भीषण हैं और जिनके सामने कोई ठहर नहीं सकता है।

(ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज)

शैवी मार्ग में यद्यपि अनन्त शक्तियां हैं पर प्रधान रूप से अघोर, घोर और घोरतरी ये तीन हैं।

अघोर शक्ति — ये अनन्त है। ये साधना पथ पर चलने वाले साधक की सहायक हैं। यदि शैवी साधक कहीं मार्ग में अटकता है तो ये शक्तियां उसे अपने इष्टदेव के ज्ञानक्रियारूपी चरणों पर धकेलती हैं। इन्हीं शक्तियों को पराशक्ति के उपनाम से भी पुकारा जाता है। ये अघोर शक्तियां पर-भैरव की सन्देश वाहिका होती हैं।

घोर शक्ति — ये घोर शक्तियां भी असंख्य हैं। परापरा शक्ति के नाम से भी ये पुकारी जाती हैं। ये शक्तियां अघोर शक्ति मार्ग की ओर साधक को जाने नहीं देती हैं। अतः वह साधक भय के कारण बीच में ही रुक जाता है पर अघोर शक्तियां उसे पतन से बचाती हैं।

घोर घोरतरी या घोर घोरतर शक्तियां भी अनन्त हैं। इन्हें अपरा शक्ति के नाम से भी पुकारा जाता है। ये शक्तियां सांसारिक विषयों में लीन करके प्राणियों को नीचे-नीचे की ओर धकेलती हैं और साधना मार्ग से विमुख कर देती हैं। ये शक्तियां अतीव भयानक हैं।

इस उपरोक्त मन्त्र का रहस्य, जो बहुरूप गर्भ स्तोत्र में व्याप्त है, हमारे पूर्वजों ने अपने वंशजों में ही आज तक सुरक्षित रखा था। किसी अज्ञात प्रेरणा के फलस्वरूप मैं इस रहस्य को बहुजनहिताय अपने सभी साधक बन्धुओं में बांटना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि अघोर भट्टारक और मेरे सद्गुरु महाराज मेरे इस दुस्साहस की ओर ध्यान न

देकर मुझे क्षमा करेंगे और अपनी कृपा दृष्टि से पूर्ववत् अनुगृहीत करेंगे।

जैसा मैंने पहले बताया कि बहुरूप गर्भ स्तोत्र 34 श्लोकों का समन्वित रूप है और महामन्त्र के बीजाक्षर भी केवल 34 हैं। इन 34 बीजाक्षरों की गणना इस प्रकार है :—

(1) ॐ	(2) अ	(3) घो	(4) रे
(5) भो	(6) थ	(7) घो	(8) रे
(9) भो	(10) घो	(11) र	(12) घो
(13) र	(14) त	(15) रे	(16) भ
(17) च	(18) स	(19) र	(20) त
(21) श	(22) र व	(23) स	(24) रे व
(25) भो	(26) न	(27) म	(28) स्ते
(29) रु	(30) द्र	(31) रू	(32) पे
(33) भ	(34) अ		

पहला बीजाक्षर “ॐ” का सम्बन्ध “ओं नमः परमाकाश०” स्तोत्र के इस पहले श्लोक के साथ है।

दूसरा बीजाक्षर “अ” का सम्बन्ध “अवाच्याया प्रमेयाय०” बहुरूप गर्भ स्तोत्र के दूसरे श्लोक के साथ है।

तीसरा बीजाक्षर “घो” का सम्बन्ध “घोषादि दशधा शब्द०” उक्त स्तोत्र के तीसरे श्लोक के साथ है।

चौथा बीजाक्षर “रे” का सम्बन्ध “रेवती संग विस्रम्भ०” उक्त स्तोत्र के चौथे श्लोक के साथ है।

पांचवें बीजाक्षर “भो” का सम्बन्ध “भोगपाणे नमस्तु०” उक्त स्तोत्र के पांचवें श्लोक के साथ है।

छठे बीजाक्षर “थ” का सम्बन्ध “थरत्प्रसर विक्षोभ०” स्तोत्र के छठे श्लोक के साथ है।

सातवें बीजाक्षर “घो” का “घोर संसार संभोग०” स्तोत्र के सातवें श्लोक के साथ सम्बन्ध है।

आठवें बीजाक्षर “रे” का सम्बन्ध “रेहणाय महामोह०” उक्त स्तोत्र के आठवें श्लोक के साथ है।

नवां बीजाक्षर “भो” “भोग मोक्ष फलप्राप्ति०” स्तोत्र के नवम श्लोक का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

दशवां बीजाक्षर “घो” “घोषाय सर्वमन्त्राणां०” स्तोत्र के दसवें श्लोक का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

ग्यारहवां बीजाक्षर “र” “रवणाय खान्ताय०” उक्त स्तोत्र के ग्यारहवें श्लोक का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

बारहवां बीजाक्षर “घो” “घोषाय परनादान्त०” स्तोत्र के बारहवें श्लोक का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

तेरहवां बीजाक्षर “र” स्तोत्र के तेरहवें श्लोक “रमणाय रतीशांग०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

चौदहवें बीजाक्षर “त” का सम्बन्ध स्तोत्र के “तमः पार प्रतिष्ठाय०” इस चौदहवें श्लोक के साथ है।

पन्द्रहवां बीजाक्षर “रे” स्तोत्र के पन्द्रहवें श्लोक “रेवद्वराय रुद्राय०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

सोलहवां बीजाक्षर “भ” स्तोत्र के सोलहवें श्लोक “भरिताखिल विश्वाय०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

सत्रहवां बीजाक्षर “च” स्तोत्र के सत्रहवें श्लोक “चर्च्याय चर्चनीयाय०” का शीर्षस्थ मातृका बीज है।

अठारहवां बीजाक्षर “स” स्तोत्र के अठारहवें श्लोक “सर्वानु-स्यूतरूपाय०” का शीर्षस्थ मातृकाबीज है।

उन्नीसवां बीजाक्षर “र” स्तोत्र के उन्नीसवें श्लोक “रम्याय वल्लभाक्रान्त०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

बीसवां बीजाक्षर “त” स्तोत्र के बीसवें श्लोक “तन्महेशाय तत्त्वार्थ०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

इक्कीसवां बीजाक्षर “श” का सम्बन्ध “शक्तिगर्भ प्रबोधाय०” स्तोत्र के इक्कीसवें श्लोक के साथ है।

बाईसवां बीजाक्षर “र व” स्तोत्र के बाईसवें श्लोक “रवत्कुण्ड-लिनी गर्भ०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

तेईसवां बीजाक्षर “स” स्तोत्र के तेईसवें श्लोक “समस्त व्यस्त संग्रस्त०” का प्रधान मातृका वर्ण है।

चौबीसवां बीजाक्षर “रे व” स्तोत्र के चौबीसवें श्लोक “रेवारणि-समुद्भूत०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

पचीसवां बीजाक्षर “भो” स्तोत्र के पचीसवें श्लोक “भोगिनी स्यन्दनारूढि०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

छब्बीसवां बीजाक्षर “न” स्तोत्र के छब्बीसवें श्लोक “नफ कोटि समावेश०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

सत्ताईसवां बीजाक्षर “म” स्तोत्र के सत्ताईसवें श्लोक “महामोह मलाक्रान्त” के साथ सम्बद्ध है।

अट्ठाईसवां बीजाक्षर “स्ते” स्तोत्र के अट्ठाईसवें श्लोक “स्तेनोन्मूलन दक्षैक०” के साथ सम्बद्ध है।

उन्नतीसवां बीजाक्षर “रु” स्तोत्र के उन्नतीसवें श्लोक “रुद्राविणे महावीर्य०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

तीसवां बीजाक्षर “द्र” स्तोत्र के तीसवें श्लोक “द्रवत्पररसा स्वाद०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

इक्तीसवां बीजाक्षर “रू” स्तोत्र के इक्तीसवें श्लोक “रूपातीत नमस्तुभ्यं०” के साथ सम्बद्ध है।

बत्तीसवां बीजाक्षर “पे” स्तोत्र के बत्तीसवें श्लोक “पेशलोपाय लभ्याय०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

तैंतीसवां बीजाक्षर “भ” स्तोत्र के तैंतीसवें श्लोक “भवप्रदाय दुष्टानां०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है।

चौतीसवां बीजाक्षर “अ” स्तोत्र के चौतीसवें श्लोक “अणूनां मुक्तये घोर०” का मूर्धन्य मातृका वर्ण है॥

इस प्रकार महामन्त्र के बीजाक्षरों और इस स्तोत्रराज के श्लोकों की विवेचना करने पर यह स्पष्ट होता है कि बहुरूप गर्भ स्तोत्र में महामन्त्र गुम्फित है और महामन्त्र में बहुरूप गर्भ स्तोत्र गुम्फित है। यह अघोर भट्टारक का अनिर्वचनीय चमत्कार है। एक के बिना दूसरा अधूरा है। यही इस मन्त्रेश्वर का गुप्त रहस्य है। प्रायः सभी बीजाक्षरों में शिव-शक्तिरूपता का यामल रूप झलक उठा है।

इस बात का उल्लेख करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है कि मैंने प्रस्तुत पुस्तिका में बहुरूप गर्भस्तोत्र का जो पाठ रखा है उसका आधार दो प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियां हैं जो मेरे वंश की अमूल्य धरोहर हैं। ये दोनों पाण्डुलिपियां शारदा लिपि में हैं और कागद दो सौ वर्ष पुराना लगता है। एक पाण्डुलिपि के प्रत्येक पृष्ठ में 18 लाइनें हैं जो बहुत ही सुन्दर लिखावट का नमूना है। दूसरी पाण्डुलिपि में 10 लाइनें हैं और कागद का पन्ना छोटे आकार का है। प्रायः दोनों में पाठ भेद नहीं के बराबर है। यहां यह कहना अप्रासंगिक नहीं होगा कि बड़े साईज़ की प्रति में स्वच्छन्दभैरव या अघोर भट्टारक की, बहुरूप गर्भ स्तोत्र पाठ के पश्चात् पूजा पद्धति भी है जिसमें पटल यन्त्रोद्धार, कवच, पूजा पद्धति, स्तोत्र, सहस्रनाम ये पांच सोपान हैं। यह पूजा पद्धति आज तक अप्रकाशित और अज्ञात है। इस पूजा पद्धति की शारदा लिपि में हस्तलिखित प्रति मेरे पास सुरक्षित है। इसकी प्राचीनता उल्लेखनीय है। पर इस पूजा पद्धति का प्रयोग सामान्य पाठक नहीं कर सकते क्योंकि इस में जो विधि-विधान है वह अत्यन्त कष्टसाध्य है। सद्गुरु महाराज की कृपा से ही ऐसा सुअवसर किसी साधक को मिल सकता है।

बहुरूप गर्भ स्तोत्र की कई प्रतियों में “वृद्ध स्वच्छन्दतन्त्र प्रोक्त” ऐसा वर्णन मिलता है पर हमारे सद्गुरु महाराज ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी इसे ‘ललित स्वच्छन्द तन्त्र’ से ही उद्धृत मानते हैं। बहुरूप गर्भ स्तोत्र की पुष्पिका में भी ललित स्वच्छन्द का ही उल्लेख है। कदाचित् “लकुल स्वच्छन्द” भी ललित स्वच्छन्द नाम से साधक परम्परा में प्रसिद्ध हुआ होगा। शारदा लिपि में लिखित जिन प्राचीन पाण्डुलिपियों का मैंने पहिले उल्लेख किया उन में भी “ललित स्वच्छन्द तन्त्र” का ही नाम अंकित है वृद्ध स्वच्छन्द तंत्र का नहीं। फिलहाल शोधकार्य में रुचि रखने वाले विद्वानों को “वृद्ध स्वच्छन्दतंत्र” के विषय में पूरी खोज करनी चाहिए।

बहुरूप गर्भ स्तोत्र की प्राचीनता के विषय में निश्चितरूप से कुछ कहा नहीं जाता। पर इस स्तोत्र में प्रयुक्त रुद्र शब्द की व्यापकता के आधार पर इसे वैदिक काल के साथ ही जोड़ा जाता है। कुछ भी हो इतना तो सर्वसम्मत है कि यह स्तोत्र ‘स्तोत्रशिरोमणि’ है। अघोर भट्टारक के इस स्तोत्र का प्रचलन कश्मीर मण्डल में सर्वाधिक रहा क्योंकि इतिहास साक्षी है कि वहां प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक नगर में, प्रत्येक गृह में शिवोपासना की अटूट परम्परा थी और इस स्तोत्र का पाठ, पूजा के आरंभ में और पूजा के अन्त में निर्बाधरूप से होता था। आजकल भी प्रायः कश्मीर में धार्मिक अनुष्ठानों, महत्त्वपूर्ण उत्सवों और यज्ञ आदि की प्रक्रिया में आरंभ और अन्त में इस स्तोत्र का पाठ अनिवार्य माना जाता है।

आगम-साहित्य पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो वहां “कुब्जिका शक्ति” का नाम स्वच्छन्दभट्टारक के साथ जुड़ा हुआ है। कश्मीर शैव दर्शन के 92 तंत्र जो ईशान, तत्पुरुष, सघोजात वामदेव और अघोर भैरव नामक परमशिव के पांच मुखों से उद्भूत माने जाते हैं उनमें 64 तन्त्र भैरव तन्त्र या अद्वैत तन्त्र जो हैं वे कुब्जिका शक्ति और स्वच्छन्द भैरव के 32-32 तंत्र माने जाते हैं। इन तंत्रों के विषय में तथा कुब्जिका

और स्वच्छन्द भैरव के विषय में प्रचुर सामग्री नेपाल के राजकीय बृहद् पुस्तकागार में उपलब्ध है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के बड़े-बड़े विद्वानों ने अपने समीक्षात्मक शोधकार्यों में कुब्जिका मत और स्वच्छन्द भट्टारक का विस्तृत परिचय दिया है। बनारस विश्वविद्यालय में ख्यातिप्राप्त अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान् डॉ० मार्क ने कुछ वर्ष पूर्व मेरे साथ वाराणसी में कुब्जिका मत का कश्मीर की विशेष पूजा पद्धति में स्थान और महत्त्व के बारे में समीक्षात्मक परिचर्चा की।

आभार

- (1) अपने सद्गुरु महाराज की असीम कृपा।
 - (2) विद्यागुरु स्वर्गीय डा० बलजिन्नाथ पण्डित जिन्होंने बहुत पहले विशिष्ट शब्दों के गूढार्थ से परिचित कराया था।
 - (3) मेरे अभिन्न मित्र स्वर्गीय प्रो० नीलकण्ठ गुरुटू जिन्होंने कई बार इस स्तोत्र के विषय में परिचर्चा करके अपने अमूल्य सुझाव दिये थे।
 - (4) ला. ब. शा. संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित “शोध प्रभा” का श्रीमती इन्दिरा गांधी श्रद्धांजली विशेषांक।
 - (5) मेरे पूज्य पूर्वजों से सुरक्षित रखी वंश परम्परा की रहस्यानुभूति।
- अन्त में ईश्वर आश्रम ट्रस्ट का आभार व्यक्त किये बिना इस यज्ञ की पूर्णाहूति संभव नहीं। विशेषतया उन्होंने इस पुस्तक का प्रकाशन श्रावण पूर्णिमा के महान् पर्व पर करवाके समस्त साधक वर्ग का परम उपकार किया।

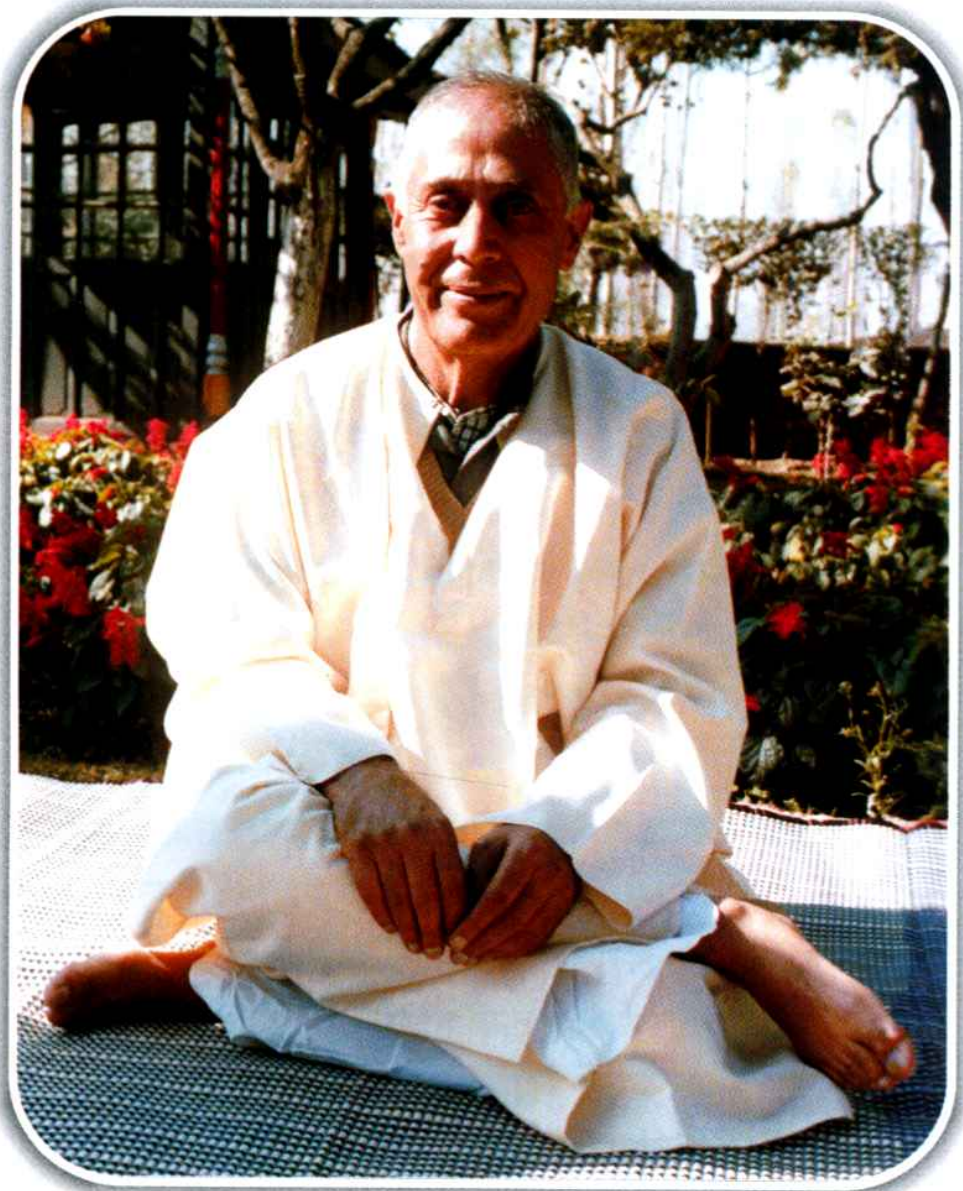
जय गुरुदेव।

प्रो० मखनलाल कुकिलू

ईश्वर आश्रम श्रीनगर

श्रावण पूर्णिमा

24 अगस्त, 2010



व्याख्याता सद्गुरुदेव

पृष्ठ १००

श

अथ श्री स्वच्छन्दभैरवस्वरूपवर्णनम्।

(1)

त्रिपञ्चनयनं देवं जटा मुकुट मण्डितम्।

चन्द्रकोटि प्रतीकाशं चन्द्रार्ध कृत शेखरम्॥

शब्दार्थ—त्रि—तीन पञ्च—पांच, नयनं—नेत्र अर्थात् पांच मुखों वाले स्वच्छन्द भैरव के प्रत्येक मुख पर तीन, तीन नेत्र हैं। पांच मुख चिद्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप हैं। तीन नेत्र सृष्टि स्थिति और संहार के प्रतीक हैं। इन सृष्टि स्थिति संहार रूप तीन क्रियाओं का चिद् आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रियारूप पांच शक्तियों के साथ गुणन होने से $3 \times 5 = 15$ नेत्रों का स्वरूप साकार हो उठता है।

नयनं—नी प्रापणे धात्वर्थक होने से नयनं का अर्थ 'उपाय' है। इस प्रकार ये तीन क्रियायें पांच शक्तियों के साथ मिलकर पन्द्रह उपायों के प्रतीक हैं। (ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी महाराज)

देवं—द्योतनशील। अथवा विश्वत्राण क्रीडा पर। कहा है—'देवः स्वतन्त्रचिद्रूपः प्रकाशात्मा महेश्वरः।'

जटा मुकुट मण्डितं — जटा और मुकुट से शोभित। अथवा जटाओं रूपी मुकुट अर्थात् जटाओं को ही मुकुट के रूप में रखा है। ऊर्ध्वपद अवस्थित वामा ऐश्वर्य आदि शक्तियां ही जटाओं का प्रतिरूप हैं। जटायें इन्हीं शक्तियों के प्रतीक हैं।

चन्द्रकोटि प्रतीकाशं — जो करोड़ों चन्द्रमाओं के समान श्वेत प्रकाशधारी है। श्वेत प्रकाश सतोगुण की अनन्तता का प्रतीक है। अर्थात् जिसमें नैर्मल्य ही नैर्मल्य है किसी प्रकार के मल की सत्ता ही नहीं। प्रकाशानन्दैकघन जो है।

चन्द्रार्ध कृत शेखरं—अर्ध चन्द्रकला जिस के मस्तक पर विराजमान है अर्थात् चन्द्रकला धारण जिसका मुख्य रूप है। अर्ध चन्द्रकला विश्व को आप्यायित करने वाली वह अमृत कला है जो चिति शक्ति का प्रतीक है।

(2)

पञ्चवक्त्रं विशालाक्षं सर्पगोनास मण्डितम्।

वृश्चिकैः अग्रिवर्णाभैः हारेण तु विराजितम्॥

शब्दार्थ—पञ्चवक्त्रं—जिसके पांच मुख हैं। ये पांच मुख चित् शक्ति, आनन्द शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति के प्रतीकात्मक श्रीभैरव के परस्वरूप को जतानेवाले हैं।

विशालाक्षं — विशाल आंखें — अर्थात् “अन्तर्लक्ष्यो बहिर्दृष्टिः निमेषोन्मेष वर्जितः” यही अवस्था विशालाक्ष से अभिप्रेत है।

सर्प गोनास मण्डितम् — सांपों और गोनासा नामक विषैले जन्तुओं से शोभित। विषैले सांप सांसारिक सुख भोगों के प्रतीक हैं। गोनासा प्रतीक है वासना का। गोनासा जिसे अंग्रेजी भाषा में VIPER कहते हैं और कश्मीरी भाषा में ‘गुनस’ कहते हैं। यह छोटी और मोटी महाविषैली, भीषण सर्प जाति से सम्बन्धित है। इसकी विशेषता यह है कि यदि इसे पकड़कर हजारों टुकड़े करेंगे या सैकड़ों बार उखाड़ कर फेंकेंगे फिर भी इसका एक-एक भाग स्पन्दनशील होता है। इसलिए ‘गोनासा’ को वासना का प्रतीक माना गया है। कहा है—

उन्मूलितापि शतशो दलितापि सहस्रशः।

गोनासेवाप्रथोदेति द्रागत्र शरणं शिवः॥

अर्थात् जैसे गोनासा के प्रत्येक अंग का टुकड़ा काट-काट कर अलग-अलग होके भी स्फुरायमान होता है इसी तरह से जब तक कि शिवकृपा उदय में नहीं आती है शान्त हो होके भी वासना स्फुरायमान होकर जन्म जन्मांतरों में मनुष्य का पीछा

करती है। स्वच्छन्दनाथ ने इसी विषैली विषय भोगाकांक्षा और वासनारूपी अप्रथा को अपने गले में धारण करके रखा है।
वृश्चिकैः अग्निवर्णभिः—लाल रंग के बिच्छुओं की, हारेण—माला से, विराजितं—शोभायमान है।

अग्निवर्णभिः—आग के लाल रंग के समान लाल वर्ण वाले बिच्छू डंक मारने में सबसे भयंकर होते हैं। ऐसे बिच्छुओं की माला को गले में स्वच्छन्दनाथ ने धारण किया है। लालरंग के बिच्छू मोह 'मद' मात्सर्य और तिरोधान करी शक्ति के प्रतीक हैं। इन चारों में से किसी एक का डंक लगने पर साधक विक्षुब्ध होता है।

(3)

कपालमालाभरणं खड्ग खेटक धारिणम्।

पाशाङ्कुशधरं देवं शरहस्तं पिनाकिनम्॥

शब्दार्थ—कपाल माला आभरणं — कपालों की माला इनका आभूषण है। सदाशिव से सकल तक सारे माया प्रमाताओं की मुण्डमाला कपाल माला से अभिप्रेत है। अथवा कं-सुखं भूमानन्द-घनस्वरूपं, पालयतीति कपाली, स्वानन्द स्वभावात् अप्रच्युतम् इत्यर्थः।

खड्ग—संसारिकों के संसार के बन्धनों को छिन्न-भिन्न करने के लिए ही ज्ञान शक्ति का चिह्नभूत खड्ग स्वच्छन्द नाथ ने हाथ में धारण किया है।

खेटक धारिणं—चर्मास्त्र (ढाल) को धारण करने वाला। साधकों के संसारिक कष्टों का क्रिया शक्ति द्वारा निवारण ही खेटक से अभिप्रेत है। इस चर्मास्त्र को हाथ में धारण करने का यही प्रयोजन है।

पाश—फन्दा (और) **अङ्कुशधरं**—अंकुश को धारण करने वाला। पाश विश्व बन्धन के स्वातन्त्र्य का प्रतीक है और अंकुश (goad) विश्व आकर्षण का साधन माना गया है। जैसे मदमत्त

हाथी के से मस्तक पर अंकुश ठोकने से ही वश में किया जाता है। उसी तरह विषय भोगों के सेवन करने से उन्मत्त बने हुए व्यक्ति को स्वस्वरूप में लाने के लिए स्वच्छन्दनाथ ने अंकुश हाथ में धारण किया है।

देवं—द्योतनशील

शरहस्तं—हाथ में बाण है, पिनाकिनं—और धनुष है। काम वासना को तितर-बितर करने के लिए बाण हाथ में धारण किये हैं। पिनाकिनं—स्वच्छन्दनाथ के हाथ में रखे धनुष का नाम 'पिनाक' है जो शासन, पालन, रोधन और पाचन कर्मों का सम्पादन करता है।

(4)

वरदाभय हस्तं च मुण्ड खट्वांग धारिणम्।

वीणाडमरुहस्तं च घण्टाहस्तं त्रिशूलिनम्॥

शब्दार्थ—वरद—वर देने की मुद्रा अभय हस्तं च—और अभय दान की मुद्रा। वर देने की मुद्रा सांसारिक भोगों को प्रदान करती है और अभय दान की मुद्रा मोक्ष प्रदायिका कही गई है।

मुण्ड—खोपड़ी को और खट्वांग—चारपाई का पाया, धारिणं—धारण करने वाला। मुण्ड से मल अभिप्रेत है जिसे अख्याति कहते हैं। यही अख्याति संसार में आवाजाही का कारण है। कहा है—मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुर कारणम्। एवं जन्ममरण के हेतुभूत अख्याति को तथा अहंकार को खोपड़ी (मुण्ड) के रूप में हाथ में धारण कर रखा है।

खट्वांग—अनाश्रित अन्तवाले इस विश्व की, अपनी संवित् भित्ति से संलग्नता का प्रतीक, खट्वांग है।

वीणाडमरुहस्तं च—वीणा और डमरु तथा घण्टाहस्तं त्रिशूलिनं जिसके हाथ में घंटा और त्रिशूल भी है। इनमें वीणा, डमरु और घण्टा ये तीन मन्द्र ध्वनि, तार ध्वनि तथा मध्य ध्वनि के

प्रतीकभूत हैं।

त्रिशूलिनं—त्रिशूलधारी को—तीनों बन्धनों का नाश त्रिशूल से अभिप्रेत है अथवा धर्म, वैराग्य और ज्ञान के प्रतीक त्रिशूल के तीन तेग कहे गये हैं। अथवा परा, परापरा और अपरा शक्ति के प्रतीक ये तीन तेग कहे गये हैं।

(5)

वज्रदण्डकृताटोपं परश्वायुध हस्तकम्।

मुद्गरेण विचित्रेण वर्तुलेन विराजितम्॥

शब्दार्थ—वज्र—(कुलिश=thunderbolt)। स्वच्छन्दनाथ के हाथ में धारण किया वज्र दुर्भेद्य विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण शक्ति प्राधान्य का सूचक है। नियति शक्ति के द्वारा विश्व आकर्षण करने की कुशलता का सूचक वह “दण्ड” है जिसे स्वच्छन्दनाथ ने अपने हाथ में धारण किया है।

परशु आयुध हस्तकं—कुल्हाड़ी नामक आयुध जिसके हाथ में है। कुल्हाड़ी प्रतीक है नादशक्ति का क्योंकि यह नादशक्ति की तरह “हल्” आकृति की होती है।

मुद्गरेण—मुद्गर से सुशोभित, सारे भेदमय प्रपंच को चकनाचूर करने का सूचक मुद्गर आयुध स्वच्छन्दभैरव ने हाथ में धारण किया है।

विचित्रेण वर्तुलेन—अनेक रंगों से रंजित गोलाकार चक्र से विराजित—सुशोभित है। चक्र प्रतीक है भाग्य पंक्ति का। समस्त विश्व के प्राणियों के भाग्य का चक्र स्वच्छन्दनाथ के हाथ में है। कहा भी है—चक्रार पंक्तिरिव गच्छति भाग्य पंक्तिः॥

(6)

सिंहचर्म परीधानं गजचर्मोत्तरीयकम्।

अष्टादशभुजं देवं नीलकण्ठं सुतेजसम्॥

शब्दार्थ—सिंहचर्म परीधानं—शेर की खाल को जिसने ओढ़ा है। सिंह

धर्म का प्रतीक है अतः स्वच्छन्दभैरव को धर्म का ज्वलन्त स्वरूप माना जाता है। अथवा स्वच्छन्द भैरव ने जो सिंह चर्म ओढ़ा है वह शुद्धविद्या ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव इन पांचों तत्त्वों का चिद् विस्तार है। क्योंकि स्वच्छन्द भैरव पंचानन (पांच मुखोंवाला) है। स्मरण रहे पंचानन शेर का भी पर्यायवाची है।

गज चर्मोत्तरीयकं—हाथी की खाल का दुपट्टा जिसने धारण किया है। हाथी अहंकार का प्रतीक है। श्रीभैरव ने अहंकार को उत्तरीय बनाकर तन पर ओढ़ा है। इस सत्य का संकेत उन्होंने हाथी की खाल को दुपट्टा के रूप में तन पर रखने से दिया है। अर्थात् मद मोह और मात्सर्य के संस्कार का लेश मात्र भी इन्हें नहीं है।

अष्टादशभुजं—श्री स्वच्छन्द भैरव की 18 भुजायें हैं। दायीं ओर 9 भुजायें और बायीं ओर 9 भुजायें। इन 18 भुजाओं में 18 आयुध हैं जिनका वर्णन वामे खेटक पाशशार्ङ्गविलसत्० इस ध्यान श्लोक में किया गया है।

देवं—द्योतनशील। या जो संसाररूपी नाटक की क्रीडा करने में तत्पर है। नीलकण्ठं—कालकूट नामक विष पान करने से जिनका गला नीला बन पड़ा है। स्मरण रहे कि समुद्रमन्थन के समय प्रादुर्भूत रत्नों में से कालकूट नामक भयंकर विष भी प्रकट हुआ था जिसे नीलकण्ठ ने पीकर कण्ठ स्थान पर रोक रखा था।

सुतेजसम्—जो प्रकाश पूर्ण है अर्थात् जो चिदानन्दघन है।

(7-8-9)

ऊर्ध्ववक्त्रं महेशानि ! स्फटिकाभं विचिन्तयेत् ।
आपीतं पूर्ववक्त्रं तु नीलोत्पलदलप्रभम् ॥

दक्षिणं तु विजानीयात् वामं चैव विचिन्तयेत्।

दाडिमी कुसुमप्रख्यं कुङ्कुमोदक सन्निभम्॥

चन्द्रार्बुद प्रतीकाशं पश्चिमं तु विचिन्तयेत्॥

इन अढ़ाई श्लोकों में स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों का वर्णन किया गया है। इनमें पहला मुख ऊपर की ओर दृष्टि उठाये है इस का वर्णन इस प्रकार है—

हे महेशानि—हे पार्वति ! (स्वच्छन्द भैरवस्य) ऊर्ध्ववक्त्रं स्फटिकाभं (तथा) पूर्ववक्त्रं आपीतं विचिन्तयेत्—स्वच्छन्द भैरव का ऊर्ध्वमुख अर्थात् ऊपर की ओर दृष्टि डाला हुआ मुख, स्फटिकाभं—स्फटिक मणि के आकार वाला है अर्थात् जैसे स्फटिक रत्न (बिलौर) [कश्मीरी में स्फटिक को सुटखअ कहते हैं] का वर्ण होता है उसी आकार का इनका ऊर्ध्वमुख है। स्फटिक मणि की यह विशेषता होती है कि वह अत्यन्त निर्मल व पारदर्शी होता है। श्रीभैरव का यह ऊर्ध्वमुख भी अत्यन्त निर्मल व पारदर्शी है। सारे विश्व का प्रतिबिम्ब इसमें सदा पड़ा रहता है जिसमें एक-एक वस्तु छोटी या बड़ी विभागशः क्रम से दीखती है।

पूर्ववक्त्रं आपीतं विचिन्तयेत्—स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों में दूसरा मुख पूर्व दिशा की ओर है। आपीतं—इसका रंग चारों ओर से पीला है। ऐसे रंगवाले दूसरे मुख का विचिन्तयेत्—ध्यान करें। पीतरंग—पीला रंग वैराग्य वृत्ति का द्योतक है अतः यह मुख वैराग्य वृत्ति का साकार रूप है।

दक्षिणं तु नीलोत्पलदलप्रभम् विजानीयात्—पंचाननों में श्री स्वच्छन्द भैरव का तीसरा मुख दक्षिण दिशा की ओर है। इसका रंग नील कमल के पंखुड़ियों का सा है। ऐसा विजानी-यात्—ध्यान करे।

कुण्डलिनी उपासना पद्धति में साधक स्वच्छन्द भैरव के तीसरे मुख का ध्यान मणिपूर चक्र में करता है क्योंकि इस

चक्र में दस पंखुड़ियों वाला नील कमल होता है जिसका वेधन करने के पश्चात् ही इस चक्रस्थित उपलब्धियों को प्राप्त किया जाता है।

दाडिमी कुसुमप्रख्यं, कुङ्कुम उदक सन्निभं वामं चैव विचिन्तयेत्—श्री स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों में चौथा मुख वाम दिशा (बायीं दिशा) की ओर है। इसका रंग दाडिमी कुसुम—अनार के फूल, प्रख्यं—जैसा तथा उदक—जल मिश्रित, कुङ्कुम—केसर के सन्निभम्—समान है। अर्थात् केसर के रंग से रंजित जल जैसा दिखता है तथा अनार का फूल भी जिस रंग का होता है प्रायः एक समान दिखने वाले इन्हीं रंगों की आकृति का वामदिशा की ओर दिखने वाला इनका चौथा मुख है।

ऊपर निर्दिष्ट लाल रंग की गहराई दृष्टव्य है—संत कबीर ने भी इस लाल रंग की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि—लाली देखी लाल की जित देखूं तित लाल।

लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल।

सारे विश्व के प्रति अन-अपेक्षित (unconditional) प्रेम रखने वाले इस चौथे मुख की विशेषता लाल रंग से रंजित होने के कारण है। लाल रंग प्रेम का प्रतीक है। अतः सारे विश्व में अनअपेक्षित प्रेम, धर्म-वर्ण-जाति की अनदेखी करके, परस्पर बांटना ही इस मुख की साधना का सार है।

चन्द्रार्बुद प्रतीकाशं पश्चिमं तु विचिन्तयेत्। पश्चिमं — श्री स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों में पश्चिम दिशा (west) की ओर दिखने वाला मुख चन्द्र अर्बुद प्रतीकाशं—अरबों चन्द्रमाओं के समान उज्ज्वल दिखने वाला, विचिन्तयेत्—ध्यान करे।

श्री स्वच्छन्द भैरव का यह पांचवां मुख अत्यन्त नैर्मल्य के कारण सत्त्वोद्रेक का प्रतिफलन है। अर्थात् यहां इस मुख में केवल सतोगुण की अगाध गरिमा है। शेष गुणों का अस्तित्व लेश मात्र भी यहां नहीं है। सतोगुण प्राचुर्य के लिए इस पांचवें

मुख की साधना तथा ध्यान आवश्यक है। इस प्रकार श्री स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों की विभिन्न ध्यान साधना इन उपरोक्त श्लोकों में बतायी गयी है। एतदनुसार उपरिस्थित प्रथम मुख स्फटिक के रंग का सा, दूसरा पूर्वदिशोन्मुख मुख पीले वर्ण का, तीसरा दक्षिणदिशोन्मुख वदन नील कमल के पंखुड़ियों का सा नील, चौथा वामदिशोन्मुख मुख अनार के फूल तथा कुङ्कुम मिश्रित जल का सा ललिमा युक्त, और पांचवां वामदिशोन्मुख मुख अनन्त चन्द्रमाओं के प्रकाश के समान निर्मल है। स्फटिकवर्ण, पीतवर्ण, नीलवर्ण, रक्तवर्ण और सफेद रंग ये पांच बिलोरी, पीला, नीला, लाल और सफेद रंग महागायत्री के पांच मुखों के रंगों के समान ही है। जैसे—“मुक्ताविद्रुमहेम नीलधवलच्छायैः मुखैस्त्र्यक्षणैः” अर्थात् मुक्ता-मोती विद्रुम-मूंगा, हेम-सुनहरी पीला, नील-नीला, धवल-सफेद वर्णों के तीन आंखों वाले मुखों से। कहा भी है कि स्वच्छन्दभैरव का साधक महागायत्री की विशेष कृपा का पात्र अनायास ही होता है।

(10)

स्वच्छन्दभैरवं देवं सर्वकामफलप्रदम्।

ध्यायते यस्तु युक्तात्मा क्षिप्रं सिध्यतिमानवः॥

शब्दार्थ—सर्वकाम फलप्रदम्—समस्त इच्छाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाले स्वच्छन्दभैरवं देवं—श्री स्वच्छन्द भैरव का यस्तु—जो, युक्तात्मा—समाहित मनवाला साधक, ध्यायते—ध्यान करता है, वह मानवः—साधारण व्यक्ति भी यदि हो तो क्षिप्रं—तत्काल, शीघ्रातिशीघ्र, सिध्यति—सिद्धि को प्राप्त करता है।

(11-12)

या सा पूर्वं मया ख्याता अघोरी शक्तिरुत्तमा।

भैरवं पूजयित्वा तु तस्योत्सङ्गे तु तां न्यसेत्॥

यादृशं भैरवं रूपं भैरव्यास्तादृग् एव हि
 ईषत् करालवदनां गम्भीर विपुलस्वनाम्।
 प्रसन्नास्यां सदा ध्यायेत् भैरवीं विस्मितेक्षणाम्॥

शब्दार्थ—श्री भैरव कहते हैं कि मया—मैंने पूर्व—पहले, ख्याता—कहा है
 सा अघोरी शक्तिः उत्तमा—कि, वह अघोरी शक्ति उत्तम
 शक्ति है। भैरवं पूजयित्वा—पहले स्वच्छन्द भैरव की अर्चना
 करनी चाहिए। फिर तस्य—उसी की, उत्संगे—गोदी में, तां—उस
 भैरवी को न्यसेत्—विराजमान करना चाहिए।

यादृशं—जैसा, भैरवं रूपं—भैरव का रूप है, भैरव्याः—भैरवी का
 भी, तादृगेवहि—वैसा ही रूप है। अतः ईषत्—थोड़ा सा,
 करालवदनां—भीषण मुखवाली, गम्भीर—गम्भीर तथा
 विपुलस्वनां—जोर से शब्द करती हुई प्रसन्नास्यां—प्रसन्न मुखवाली,
 विस्मितेक्षणां—चकित नेत्रों वाली, उस भैरवीं—भैरवी शक्ति
 का, सदा—प्रति समय ध्यायेत्—ध्यान करे।

भैरवी का करालवदनां कहने का तात्पर्य यह है कि भैरवी भी
 सांसारिकों के पूर्व जन्मों के संचित सारे कुकर्मों का नाश
 करने से कुछ करालवदना दिखती है।

गम्भीर विपुलस्वनां कहने का तात्पर्य यह है कि भैरवी स्वयं
 विमर्शशक्तिस्वरूपा होने से, विमर्श प्राधान्य की घोर झंकार से
 लबालब भरी हुई है।

प्रसन्नवदनां कहने का तात्पर्य यह है कि पर भैरव के समान
 भैरवी भी सदा अनुग्रहतत्परा है तथा विस्मितेक्षणां—चकित
 नयनों वाली है। स्मरण रहे भैरवीमुद्रा भी विस्मितेक्षणा कही
 गई है।



श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रम्

(आमुखम्)

ॐ ब्रह्मादि कारणातीतं स्वशक्त्यानन्दनिर्भरम्।

नमामि परमेशानं स्वच्छन्दं वीरनायकम्॥

अन्वय—ब्रह्मादि कारण अतीतं, स्वशक्त्या आनन्द निर्भरम्। परमेशानं वीरनायकं स्वच्छन्दं नमामि॥

शब्दार्थ—ब्रह्मादि कारणातीतं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक त्रिकारणों से अतीत, स्वशक्त्या—अपनी विमर्शरूपा शक्ति के साथ, आनन्दनिर्भरं—परमानन्द में मग्न, परमेशानं—परमशिवस्वरूप, वीरनायकम्—वीरों में प्रधान, स्वच्छन्दं—स्वच्छन्द भैरव को, नमामि—प्रणाम करता हूँ। प्रणाम करने का तात्पर्य उसी में समाविष्ट होना है।

भाषानुवाद—(मैं) वीरनायक, परम शिवस्वरूप उस स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम करता हूँ जो ब्रह्मा आदि त्रिकारणों से परे हैं, और अपनी विमर्श शक्ति के साथ परमानन्द में मग्न हैं।

विशेष — वीरनायक—अपने स्वरूप विमर्श के चमत्कार रस से जो जाग्रदादि व्यवहार त्रय में भी डिग नहीं सकता उसे वीर नायक कहते हैं। कहा भी है “त्रितयभोक्ता वीरेशः”। (शिवसूत्र)

स्वच्छन्दं—विश्वैक रूप विश्वात्म, विश्वसर्गादि कारणम्।

परप्रकाशवपुषं, स्तुमः स्वच्छन्द भैरवम्॥ (स्व.त.)

अर्थात् सारा संसार जिसका रूप है, जो सारे संसार की आत्मा है, सारे संसार की सृष्टि स्थिति व संहार का जो कारण है और जो परम प्रकाश स्वरूप वाला है, उस स्वच्छन्द भैरव की हम स्तुति करते हैं।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुम्।

पप्रच्छ प्रणता देवी भैरवं विगतामयम्॥

अन्वय—कैलास शिखर आसीनं, विगत आमयं देवदेवं, जगत् गुरुं, भैरवं प्रणता देवी पप्रच्छ॥

शब्दार्थ—कैलास शिखरासीनं—कैलास पर्वत की चोटी पर बैठे हुए, विगत आमयं—सारी पीडाओं से विमुक्त देवदेवं—देवाधिदेव, जगत् गुरुं—संसार के गुरु, भैरवं—स्वच्छन्द भैरव को, प्रणता—विनम्र होके देवी—माता ने, पप्रच्छ—पूछा।

भाषानुवाद—एक समय की बात है कि कैलास पर्वत पर बैठे हुए प्रसन्न मन देवाधिदेव जगत् गुरु श्री स्वच्छन्दनाथ को प्रणाम करके देवी ने उनसे पूछा।

विशेष—विगतामयं—सारी चिन्ताओं से जो रहित हो अतः शुद्धात्मा।

श्री देवी उवाच—

श्री देवी कहने लगी।

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु समयोल्लङ्घनेषु च।

महाभयेषु घोरेषु तीव्रोपद्रवभूमिषु॥

छिद्रस्थानेषु सर्वेषु सदुपायं वद प्रभो।

येनायासेन रहितो निर्दोषश्च भवेत् नरः॥

अन्वय—हे प्रभो! सर्वेषु प्रायश्चित्तेषु समय उल्लङ्घनेषु च तीव्र उपद्रवभूमिषु घोरेषु महाभयेषु सर्वेषु छिद्रस्थानेषु सत् उपायं वद येन नरः आयासेन रहितः निर्दोषः च भवेत्॥

शब्दार्थ—सर्वेषु—सभी प्रकार के प्रायश्चित्तेषु—प्रायश्चित्तों में, समय उल्लङ्घनेषु च—और शास्त्र आचार के अतिक्रमण करने में, तीव्र—अति तेज प्रभाव वाले, उपद्रवभूमिषु—उपद्रवों की अवस्थाओं में, घोरेषु महाभयेषु—घोर भयदायक स्थितियों में, सर्वेषु—सभी प्रकार के छिद्रस्थानेषु—दोष स्थानों के विद्यमान

रहने पर भी, आयासेन रहितः नरः—किसी प्रयास के बिना, एक उपासक, निर्दोषः—सारे दोषों से विमुक्त, भवेत्—होवे, सत् उपायं वद—ऐसा कोई श्रेष्ठ उपाय कहिये।

भाषानुवाद—सभी प्रकार के प्रायश्चित्तों में और शास्त्राचार के उल्लंघन करने में, घोर प्रभाववाले उपद्रवों की अवस्थाओं में, अत्यन्त भयदायक स्थितियों में, सभी तरह के दोषस्थानों में, एक उपासक, किसी कष्ट के बिना, इन सभी दोषों से कैसे विमुक्त होवे, हे प्रभो ! ऐसा कोई उपाय कहिये।

विशेष—प्रायश्चित्त-धर्मशास्त्रों में दोषदुष्फलनिवारककर्म को प्रायश्चित्त नाम से जाना जाता है। यह विशेष विधान पाप मुक्ति के लिए अनिवार्य है।

श्री भैरव उवाच—

श्री भैरव कहने लगे।

शृणु देवि ! परं गुह्यं रहस्यं परमाद्भुतम्।

सर्वपाप प्रशमनं सर्वदुःख निवारणम्॥

प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु तीव्रेष्वपि विमोचनम्।

सर्वच्छिद्रापहरणं सर्वार्तिविनिवारकम्॥

समयोल्लङ्घने घोरे जपादेव विमोचनम्।

भोगमोक्षप्रदं चैव सर्वसिद्धि फलावहम्॥

अन्वय—देवि ! सर्व पाप प्रशमनं, सर्व दुःख निवारणं, सर्वच्छिद्रापहरणं, सर्वा आर्ति विनिवारकं, सर्वेषु तीव्रेषु अपि प्रायश्चित्तेषु विमोचनं, घोर समय उल्लङ्घने जपादेव विमोचनं, भोग मोक्षप्रदं, सर्व सिद्धि फलावहं च, परम अद्भुतं परं गुह्यं रहस्यं शृणु॥

भाषानुवाद—हे देवि ! सारे पापों का विनाशक, समस्त कष्टों को दूर करने वाला, अज्ञान से, विस्मृति से या भ्रान्ति से की गई सारी त्रुटियों की क्षमा करने वाला, सारी व्यथाओं का विनाशक, साधारण प्रकार के या असामान्य प्रकार के प्रायश्चित्तों का

शोधक, समय शास्त्र के आचारों का घोर अतिक्रमण होने पर भी केवल जप मात्र से ही उन दोषों से मुक्त करने वाला, भुक्ति और मुक्ति को देने वाला, सारी सिद्धियां प्रदान करने वाला अत्यन्त विस्मयावह तथा अतीव गोपनीय रहस्यात्मक इस बहुरूप गर्भस्तोत्र को सुनो।

शतजाप्येन शुद्ध्यन्ति महापातकिनोऽपि ये।

तदर्थं पातकं हन्ति तत्पादेनोपपातकम्॥

अन्वय—ये महापातकिनः तेऽपि शतजाप्येन शुद्ध्यन्ति। तत् अर्थं पातकं हन्ति, तत्पादेन उपपातकम्॥

शब्दार्थ—ये—जो महापातकिनः—महान् पाप कर्मों का आचरण करने वाले हैं, तेऽपि—वे भी, शतजाप्येन—सौ बार इस स्तोत्रराज के पाठ से, शुद्ध्यन्ति—पाप मुक्त होते हैं।

तत् अर्थं—सौ का आधा अर्थात् पचास बार किया गया इस स्तोत्रराज का पाठ पातकं हन्ति—विशिष्ट प्रकार के पाप कर्म को नष्ट करता है। तत् पादेन—सौ के चतुर्थांश के रूप में अर्थात् पच्चीस बार किया गया इस स्तोत्रराज का पाठ 'उपपातक' को नष्ट करता है।

भाषानुवाद—जो घोर पापकर्म करते हैं वे भी सौ बार इस बहुरूपगर्भ पाठ से पाप मुक्त होते हैं। विशिष्ट प्रकार के पापों का विनाश पचास बार इस स्तोत्रराज के पाठ करने से होता है। पच्चीस बार किया गया इस स्तोत्रराज का पाठ 'उपपातक' से विमुक्त करता है।

विशेष—महापातक, पातक, उपपातक। धर्मशास्त्र में पाँच महापातक गिनाये गये हैं—ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वगनागमः महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैस्सह (मनुस्मृति 11.54)। याज्ञवल्क्यस्मृति में उपपातकों की संख्या 50 मानी गई है—महापातक तुल्यानि पापानि उक्तानि यानितु।

तानि पातक संज्ञानि सत् न्यूनं उपपातकम्॥

कायिकं वाचिकं चैव मानसं स्पर्श दोषजम्।

प्रमादात् इच्छया वापि सकृत् जाप्येन शुद्ध्यति॥

अन्वय—प्रमादात् इच्छया वा अपि, कायिकं, वाचिकं मानसं स्पर्श दोषजं च सकृत् जाप्येन शुद्ध्यति॥

शब्दार्थ—प्रमादात्—असावधानता से, इच्छया वा अपि—या जान बूझकर भी, कायिकं—शरीर से उत्पन्न, वाचिकं—वाणी कृत, मानसं—मन से, स्पर्श—या स्पर्शमात्र से, दोषजं—उत्पन्न हुआ पाप, सकृत्—एक बारगी, जाप्येन—पाठ करने से ही, शुद्ध्यति—विशुद्ध होता है।

भाषानुवाद—असावधानता से, या जानबूझकर भी किया गया वाचिक, कायिक, मानसिक या स्पर्शमात्र से उत्पन्न हुआ पाप एक बारगी इस स्तोत्रराज के पाठ करने से ही नष्ट होता है।

यागारम्भे च यागान्ते पठितव्यं प्रयत्नतः।

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत्॥

अन्वय—सरल है।

भाषानुवाद—पूजा या यज्ञ आदि कर्मों के आरम्भ और अन्त में, इस स्तोत्र का पाठ अवश्यमेव करना चाहिए तथा भक्तिपूर्वक इसको सुनना चाहिए। यह स्तोत्र बहुत ही उत्तम तथा कल्याणदायक है।

नित्ये नैमित्तिके काम्ये परस्याप्यात्मनोऽपि वा।

निश्छिद्रकरणं प्रोक्तमभाव परिपूरकम्॥

अन्वय—(इदं स्तोत्रं) परस्य आत्मनः अपि वा, नित्ये, नैमित्तिके, काम्ये, निश्छिद्रकरणं, अभाव परिपूरकं प्रोक्तम्।

भाषानुवाद—यह स्तोत्र किसी दूसरे के लिए या अपने लिए किये जाने वाले, दैनिक (सन्ध्यावन्दन आदि) कर्मों में, किसी निमित्त (प्रयोजन) के लिए किये जाने वाले कर्मों में और पुत्रप्राप्ति

आदि काम्य कर्मों में, अज्ञान से या विस्मृति से या भ्रान्ति से रह जाने वाली त्रुटियों के दोषों को दूर करने वाला और सारे अभावों को पूर्ण करने वाला कहा गया है।

विशेष—नित्य कर्म वे कर्म होते हैं जो हम सदा प्रातः उठकर नियमित रूप से करते हैं। नैमित्तिक कर्म वे कर्म होते हैं जो किसी प्रयोजन के सिद्ध होने के लिए किये जाते हैं। काम्यकर्म वे कर्म होते हैं जो कर्म (जैसे पुत्रेष्टियाग आदि) इच्छा पूर्ति के लिए किये जाते हैं।

कई प्रतियों में 'अभावपरिपूरकं' के स्थान पर 'स्वभावपरिपूरकं' पाठान्तर है।

द्रव्यहीने मन्त्रहीने ज्ञानयोगविवर्जिते।

भक्तिश्रद्धाविरहिते शुद्धिशून्ये विशेषतः॥

मनोविक्षेपदोषे च विलोमे पशुवीक्षिते।

विधिहीने प्रमादे च जप्तव्यं सर्वकर्मसु॥

अन्वय—सरल है।

शब्दार्थ—द्रव्यहीने—विशेष कर्मों के आचरण के लिए निर्दिष्ट सामग्री के अभाव में, मन्त्रहीने—विशेष कर्म के लिए विशेष मन्त्रों के उच्चारण न किये जाने पर, ज्ञानयोग विवर्जिते—ज्ञान और योग से रहित, भक्तिश्रद्धा विरहिते—भक्ति और श्रद्धा से रहित कर्म करने में, शुद्धिशून्ये—पवित्रता के अभाव में, विशेषतः—विशेषकर, मनोविक्षेपदोषे—मनकी अस्थिरता की स्थिति में, विलोमे—विपरीत क्रिया में, पशुवीक्षिते—आचारहीन व्यक्ति से दृष्ट, विधिहीने—विधि रहित और प्रमादे—गफलत के कारण हुई त्रुटियों से उत्पन्न दोषों के दूर करने के लिए, तथा सर्वकर्मसु—सभी कर्मों में जप्तव्यं—इस स्तोत्र राज का पाठ करना चाहिए।

भाषानुवाद—निर्दिष्ट सामग्री के अभाव में, विशेष मन्त्र जाप के अभाव

में, ज्ञान और योग रहित कर्म में, भक्ति और श्रद्धा रहित कर्म करने में, पवित्रता के अभाव में विशेषकर मन की अस्थिरता की स्थिति में, विपरीत क्रिया में, आचारहीन व्यक्तियों की नजरों में आने में, विधि विधान के रहित कर्मों में तथा असावधानता से की गई त्रुटियों से उत्पन्न दोषों के दूर करने के लिए इस स्तोत्र का पाठ करनी चाहिये।

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरा स्तुतिः।

नातः परतरा काचित् सम्यक् प्रत्यंगिरा प्रिये!॥

अन्वय—हे प्रिये! न अतः मन्त्रः परतरः, न अतः स्तुतिः परतरा न अतः काचित् प्रत्यंगिरा सम्यक् परतरा।

शब्दार्थ—सरल है।

भाषानुवाद—हे प्रिये पार्वति! इस बहुरूप गर्भस्तोत्र पाठ से न कोई श्रेष्ठ दूसरा मन्त्र है ना ही कोई दूसरी स्तुति श्रेष्ठ है। हे प्रिये, इस बहुरूप गर्भस्तोत्र पाठ से श्रेष्ठतम कोई दूसरी प्रत्यंगिरा अर्थात् कृत्या आदि दोषों को शान्त करने वाली विद्या ही है।

विशेष—प्रत्यंगिरा—नेत्र तन्त्र में कहा है कि—

प्रत्यंगिरा प्रयोगेन हन्ति दुष्टान् अनेकशः।

अर्थात् प्रत्यंगिरा विद्या निम्नवर्ग के साधक को यथाभिमत फल न देकर विपरीत फल प्रदान करने से साधक को ही अभिचार का पात्र बनाती है।

इयं समयविद्यानां राजराजेश्वरीश्वरि!।

परमाप्यायनं देवि! भैरवस्य प्रकीर्तितम्॥

अन्वय—हे ईश्वरि! इयं समयविद्यानां राजराजेश्वरी। हे देवी! इयं भैरवस्य परम आप्यायनम् प्रकीर्तितम्।

शब्दार्थ—हे ईश्वरि! हे सर्वसामर्थ्यशाली माँ! इयं—यह बहुरूप गर्भस्तुतिः, समय विद्यानां—आचार विद्या समझाने वाले शास्त्रों की

राजराजेश्वरी—सर्वप्रधान शक्ति है। हे देवी! इयं—यह बहुरूप-
गर्भस्तुति भैरवस्य—स्वच्छन्दभैरव को, परम आप्यायनं—अत्यन्त
आनन्द प्रदान करने वाली प्रकीर्तितं—कही गई है।

प्रीणनं सर्वदेवानां सर्वसौभाग्यवर्धनम्।

स्तवराजमिमं देवि! शृणुष्व अवहिता प्रिये॥

अन्वय—हे देवि! इमं स्तवराजं सर्वदेवानां प्रीणनं, सर्वसौभाग्यवर्धनं। हे
प्रिये! अवहिता (त्वं) शृणुष्व।

शब्दार्थ — सरल है।

भाषानुवाद—हे देवि! यह बहुरूप गर्भस्तोत्रराज सारे देवताओं को खुश
करने वाला तथा प्रत्येक प्रकार के सौभाग्य की वृद्धि करने
वाला है, हे प्रिये! अतः इसे सावधान होकर सुनो।

श्री गुरवे नमः

श्रीमत्स्वच्छन्दभट्टारकाय प्रह्वीभावोऽस्तु।

मद्वंश परम्परागतस्वेष्टदेवाय स्वच्छन्दनाथाय नमो नमः।

अस्य श्रीबहुरूपभट्टारकस्तोत्रस्य श्रीवामदेव ऋषिः

अनुष्टुप्छन्दः श्रीबहुरूपभट्टारको देवता

आत्मनो वाङ्मनः कायोपार्जितपापनिवारणार्थं

चतुर्वर्गसिद्धयर्थे पाठे विनियोगः॥

(अघोरमन्त्रेण न्यासं कृत्वा)॥

अघोरेभ्यो

अथ घोरेभ्यो

घोरघोरतरीभ्यश्च/तरेभ्यश्च

सर्वतः

शर्व! सर्वेभ्यो

नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः

अंगुष्ठाभ्यां नमः।

तर्जनीभ्यां नमः।

मध्यमाभ्यां नमः।

अनामिकाभ्यां नमः।

कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥

अघोरेभ्यो	हृदयाय नमः।
अथ घोरेभ्यो	शिरसे स्वाहा।
घोरघोरतरीभ्यश्च/तरेभ्यश्च	शिखायै वषट्।
सर्वतः	कवचाय हुम्।
शर्व ! सर्वेभ्यो	नेत्राभ्यां वौषट्।
नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः	अस्त्राय फट्॥

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरीभ्यश्च (तरेभ्यश्च)।

सर्वतः शर्व ! सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः॥ १-२-३॥

(इस मन्त्र से प्राणायाम करें)

ध्यानम्

वामे खेटक पाश शार्ङ्गविलसत् दण्डं चवीणाष्टिके,
बिभ्राणं ध्वजमुद्गरौ स्वनिभदेव्यङ्कं कुठारं करे।
दक्षे ऽस्यङ्कुशकन्दलेषु डमरून् वज्रं त्रिशूलाभयान्
रुद्रस्थं शरवक्त्रमिन्दुधवलं स्वच्छन्दनाथं स्तुमः॥

अन्वय—वयं रुद्रस्थं, शरवक्त्रं, इन्दुधवलं, स्वनिभदेव्यङ्कं, स्वच्छन्दनाथं स्तुमः। (कीदृशं) वामे करे खेटक, पाश, शार्ङ्ग विलसत्दण्डं, वीणाष्टिके, ध्वजमुद्गरौ बिभ्राणं। दक्षे करे कुठारं, अङ्कुशं, कन्दलेषु, डमरुं, वज्रं, त्रिशूलं, अभयं बिभ्राणं।

शब्दार्थ एवं विशेष—वयं—हम सब स्वच्छन्दनाथ के साधक, रुद्रस्थं—महारुद्र के पीठ पर विराजमान, शरवक्त्रं—पांच मुखों को धारण करने वाले, इन्दुधवलं—चन्द्रमा की तरह सफेद वर्णवाले, स्वनिभदेव्यङ्कं—स्वनिभा—अपने ही स्वरूप के समान उज्ज्वल, देव्यङ्कं—देवी अंके (यस्य) परा—भट्टारिका जिसकी गोदी में स्थित है, (उस) स्वच्छन्दनाथं—स्वच्छन्दनाथ की स्तुमः—स्तुति करते हैं। यहाँ ध्यान में वरद—वर देने वाली मुद्रा का यद्यपि उल्लेख नहीं हुआ है तथापि उसका (वरदमुद्रा का) अध्याहार करें।

रुद्र—रुजं रोगं द्रावयति विनाशयति इति रुद्रः अथवा प्रलय-
 कालिक वृष्टि रुद्र के सूर्यनामक नेत्र से उत्पन्न अश्रु के रूप में
 हुई अतः रोदयति इति रुद्रः। वेदों में कहा है—सोऽरोदीत् यत्
 अरोदीत् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्॥ तथा जिसके वामे करे—बायें
 हाथ में खेटक—ढाल, पाश—यमपाश (फन्दा) शार्ङ्ग—धनुष,
 विलसत्दण्डं—शोभायमान दण्ड, वीणा—सितार, अष्टिका—छोटी
 घंटी; ध्वज—पताका, और मुद्गर—मुद्गर, बिभ्राणं—धारण किया
 है, तथा दक्षे करे—दाहिने हाथ में, कुठारं—फरसा, अङ्कुशं—
 नुकीला शस्त्र (प्रायः मत्त हाथी के मस्तक पर ठोक कर उसे
 वश में किया जाता है) कन्दलेषुं—ईख के काण्ड का बना
 बाण, डमरुं—डमरू नामक वाद्य विशेष, वज्रं—अशनि,
 त्रिशूलं—त्रिशूल, अभयं—अभयमुद्रा, मुण्ड—खोपड़ी, और
 खट्वाङ्ग—चारपाई का पाया। मुण्ड और खट्वाङ्ग का ध्यान में
 उल्लेख न होने पर भी इनका अध्याहार करे। यहां यह स्मरणीय
 है कि स्वच्छन्दनाथ की अठारह भुजायें हैं। बायें तरफ की नौ
 भुजाओं में खेटक, पाश, धनुष, दण्ड, वीणा, छोटी घण्टिका,
 पताका, मुद्गर और अभयमुद्रा है और दायें तरफ की नौ
 भुजाओं में फरसा, अङ्कुश, इक्षुकाण्ड बाण, डमरु, वज्र, त्रिशूल,
 अभयमुद्रा, मुण्ड और खट्वाङ्ग हैं। अत एव स्वात्मरूपा
 अष्टादशभुजा शारिका परादेवी इसकी गोदी में विराजमान है।
 यहां यह ध्यान देने योग्य है कि स्वच्छन्द भैरव की विशेष
 आकार रचना का जो वर्णन इस ध्यान श्लोक में हुआ है
 उसका निरूपण श्री स्वच्छन्द भैरव रूप चिन्तन में अर्थात्
 कपालमालाभरणं आदि श्लोकों में सुस्पष्ट हुआ है। श्री स्वच्छन्द
 नाथ का आभरण कपाल माला है। तथा अठारह भुजाओं में
 मुण्ड, खेटक, पाश, अङ्कुश, बाण, धनुष (पिनाकिनम्), वरद
 मुद्रा, अभयमुद्रा, खट्वाङ्ग, वीणा, डमरु, घण्टा, त्रिशूल, वज्र,

दण्ड, परशु, मुद्गर और गोलाकार चक्र शोभायमान है। कई प्रतियों में 'दक्षेऽपि अस्य' (ध्यान की तीसरी पंक्ति में) के स्थान पर दक्षेऽस्यंकुश अर्थात् दक्षे—दायें हाथ में, असि—तलवार (असि + अंकुश = अस्यंकुश) यह उल्लेख है। उपरोक्त स्वरूप चिन्तन में भी 'खड्ग' का चित्रण अर्थात् 'खड्ग' भी दिखाया गया खड्ग को ज्ञान शक्ति का चिह्न माना है। इसी से संसार के पाश छिन्न-भिन्न होते हैं। ऐसी अवस्था में वज्र और दण्ड को 'वज्रदण्डकृताटोप' वज्रदण्ड नामक एक ही आयुध मानकर अठारह आयुधों की संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। कहा है 'अष्टादशभुजं देवं नीलकण्ठं सुतेजसम्'॥

सद्गुरु महाराज के श्रीमुख से रविवासरीय परिचर्चाओं में जो कुछ समय-समय पर प्रतीकात्मक आयुधों के विषय में प्रस्फुटित हुआ उसी के परिप्रेक्ष्य में कुछेक आयुधों की वास्तविकता के विषय में उल्लेख करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

सद्गुरु महाराज ने खेटक को भवार्णव से क्रियाशक्ति द्वारा दुःखमुक्त कराने का प्रतीक माना है। अंकुश समस्त संसार को आकृष्ट करने का साधन माना जाता है। वर देने की मुद्रा सांसारिक भोगदात्री मानी गई है। अभयदान की मुद्रा मोक्ष प्रदायिका कही गई है। कहा है—'अभयेन च भयान्युन्मूलयता प्रकाशयते सतत् विश्वानुग्रहकरण स्वभावता।' नाद चिन्तन की स्फुरत्ता वीणा, डमरु और घण्टा से अभिप्रेत है।

'मुण्ड' को मल कहा गया है—'मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुर कारणम्' अर्थात् मल अज्ञान को कहते हैं जो संसार में जन्ममरण का कारण है।

त्रिशूल के विषय में तन्त्रालोक में कहा है—

तन्मध्ये तु परादेवी दक्षिणे च परापरा।

अपरा वामशृङ्गे तु मध्य शृङ्गोर्ध्वतः शृणु॥

या सा सङ्कर्षिणी काली परातीता व्यवस्थिता॥

‘वज्र’ को दुर्भेध विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण शक्ति प्राधान्य का सूचक माना गया है। नियन्त्रण और संरोध शक्ति का प्रतीक ‘दण्ड’ माना गया है। भेदप्रथा के अवभास के संस्कार शेष को भी मिटाने का प्रतीक ‘मुद्गर’ माना गया है।

शरवक्त्रं—पांच मुखों वाला अर्थात् चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया स्वच्छन्द नाथ के पांच मुख हैं। प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र हैं जो सृष्टि, स्थिति और संहार के स्वरूप हैं। इस प्रकार ये $3 \times 5 = 15$ नेत्र इस दुस्तर भव सागर से पार होने के लिए 15 उपाय हैं। ‘नयन’ का अर्थ नेत्र है। सद्गुरु महाराज ने सन् 1973 में ‘साधुगंगा’ नामक तीर्थस्थान पर शिष्य मण्डली को ‘त्रिपंचनयनं देवं जटा मुकट मण्डितं’ का अर्थ समझाते हुए नयनं का ‘नी प्रापणे’ धात्वर्थ के परिप्रेक्ष्य में उपाय अर्थ किया।

भावार्थ—महारुद्र के पीठ पर स्थित, पांच मुखों वाले चन्द्र के समान श्वेताकार स्वस्वरूपा भैरवी को अपनी गोदी में रखे हुए, श्री स्वच्छन्द नाथ की हम स्तुति करते हैं। इनके बायें भाग की नौ भुजाओं में तथा दायें भाग की नौ भुजाओं में (कुल अठारह भुजाओं में) क्रमशः निम्नलिखित आयुध हैं :— बायें भाग की नौ भुजाओं में ढाल, यमपाश, धनुष, सुशोभित दण्ड, वीणा, छोटी घण्टिका, ध्वजा, मुद्गर और वरद मुद्रा है। दायें भाग की नौ भुजाओं में फरसा, नुकीला शस्त्र, ईख के काण्ड का बाण, डमरु, वज्र, त्रिशूल, अभय मुद्रा, खोपड़ी और चारपाई का पाया है।



श्रीबहुरूपगर्भस्तोत्रम्

(1)

ॐ नमः परमाकाशशायिने परमात्मने।

शिवाय परसंशान्त निरानन्दपदायते॥

अन्वय—परमाकाशशायिने परसंशान्त, निरानन्दपदाय परमात्मने शिवाय ते नमः॥

शब्दार्थ—नमः—नमस्कार अर्थात् उसमें समाविष्ट हो रहा हूँ अथवा मैं अपनी व्युत्थान दशा में भी उसको यथावत् साक्षात्कार करता हूँ। परमाकाश शायिने—परम आकाशे शेते इति परमाकाश शायिने, अर्थात् अपने ही परशिव रूप स्वरूपात्मक आधार पर विश्राम करने वाले, कहा है—‘स्वेच्छया स्वमितौ विश्व-मुन्मीलयति’ (प्र.ह.) परसंशान्त—अक्षुब्धावस्था में ठहरे हुए, निरानन्द पदाय—निजानन्द, जगदानन्द आदि छः अवस्थाओं में वर्णित निरानन्द नामक भूमिका पर आसीन, परमात्मने—महाप्रकाश स्वरूप परम कल्याणमय, शिवाय—महादेव को, ते—तुझे।

भाषानुवाद—अपने ही स्वरूपात्मक आधार पर विश्राम करने से अक्षुब्धावस्था में स्थित, निरानन्द नामक आनन्द भूमिका पर आसीन परम कल्याणमय महादेव को प्रणाम हो॥

विशेष—ॐ प्रत्येक प्राणी के हृदय में सारे शब्द ब्रह्म को अपने स्वरूप में समाकर धारण करने वाला नादरूपी महान प्रणव ॐ है, जो अविच्छिन्न प्रवाह से अन्दर ही अन्दर गूंजता रहता है।

अन्तरालीन तत्त्वौघं चिदानन्दघनं महत्।

यत्तत्त्वं शैवधामाख्यं तदोमित्यभिधीयते॥

परमात्मने शिवाय यह विशेषण है उस शिव का जो महाप्रकाश-पूर्ण स्व स्वरूप परामर्श रूप होने से असाधारण है।

परसं शान्त—अक्षुब्धावस्था में स्थित। स्पन्दकारिका में कहा है—यदा क्षोभः प्रलीयेत तदास्यात् परमं पदम्। श्रीईश्वरप्रत्यभिज्ञा में कहा है—विकल्प हानेनैकाग्र्यात् क्रमेणेश्वरता पदम्। निरानन्द पदाय—कहा है—शून्यतामात्र विश्रान्ति निरानन्दात्मिका स्थितिः या निरानन्दं विभावयेत्। (मा. वि.)

आनन्दभूमयः षट्—निजानन्द, निरानन्द, परानन्द, जगदानन्द महानन्द, चिदानन्द। (श्री अभिनवगुप्तपाद)

(2-3)

अवाच्यायाप्रमेयाय प्रमात्रे विश्वहेतवे।

महासामान्यरूपाय सत्तामात्रैकरूपिणे॥

घोषादि दशधा शब्द बीजभूताय शम्भवे।

नमः शान्तोग्रघोरादि मन्त्र सन्दर्भ गर्भिणे॥

अन्वय—अवाच्याय, अप्रमेयाय, प्रमात्रे, विश्वहेतवे, महा असामान्यरूपाय, सत्तामात्र एक रूपिणे, घोष आदि दशधा शब्द बीजभूताय, शान्त उग्र घोर आदि मन्त्र सन्दर्भ गर्भिणे शम्भवे नमः॥

शब्दार्थ तथा विशेष—अवाच्याय—विकल्प विज्ञान से समझे जाने वाले भाव को वाच्य कहते हैं। जो इस समझ से दूर हो उसे अवाच्य कहते हैं। अतः इसका अर्थ यह है कि जिसकी विकल्प विज्ञान से प्रतीति संभव न हो उसे अवाच्य कहते हैं। प्रकारान्तर से वही नाद रूप है। अप्रमेयाय—निर्विकल्प विज्ञान से भी जिसकी प्रतीति संभव न हो उसे अप्रमेय कहते हैं अर्थात् निर्विकल्प विज्ञान की इयत्ता से भी जो कोसों दूर है। प्रमात्रे—प्रमाता को

(the supreme knower not known by any means)
परप्रमाता को।

विश्वहेतवे—सारे वेद्यवर्ग को अर्थात् माया तत्त्व से पृथिवी तत्त्व तक सारे संसार को अपनी इच्छा से अपने ही आधार पर विकास में लाने से कारणरूप बने हुए महा—अत्यन्त या महान् असामान्य रूपाय—असाधारण रूप वाले, सत्तामात्रैक रूपिणे—सत् स्वरूप में अवस्थित अथवा सत्ता—प्रकाश ही, मात्रैकरूपिणे—एकमात्र रूप जिसका उसे, घोषादि दशधा शब्द—घोष आदि दस प्रकार के शब्दों का बीजभूताय—मूल कारण। कहा है—‘नादाख्यं यत्परं ब्रह्म सर्वभूतेषु अवस्थितम्’ इस कथन के अनुसार सारे भूत वर्गों में अन्तः चारी होने से सारे भूतों का बीज कारण। शब्द शास्त्रों में दस प्रकार कहे गये हैं जो इस प्रकार हैं:—

‘चिनी’ तु प्रथमः शब्दः, ‘चिञ्चिनी’ तु द्वितीयकः।

‘चीरवाकी’ तृतीयस्तु, ‘शङ्खशब्दः’ चतुर्थकः।

‘तन्त्री’ घोषः पञ्चमस्तु, षष्ठो ‘वंशरवः’ तथा।

सप्तमः ‘कांस्यतालः’ तु ‘मेघ’ शब्दोऽष्टमः तथा।

नवमः ‘दाव निर्घोषः’ दशमो ‘दुन्दुभिस्वनः’।

श्रीस्वच्छन्दतन्त्र के अनुसार घोष, रव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झङ्कार, ध्वंकृति ये आठ शब्द हैं नवम शब्द महाशब्द है जो इन आठों शब्दों का वाचक है क्योंकि यही महाशब्द सारे जीवों में अवस्थित हो के शब्दन व प्राणन करता है। इसी महानाद से दसवां शब्द ‘बिन्दु’ उत्पन्न हुआ। अतएव कहा है ‘घोषादि दशधा शब्द’। यह बिन्दु ही स्वच्छन्द भैरव है जो ‘सूर्य-कोटि समप्रभः’ अर्थात् करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान है, तथा ब्रह्माविष्णुरुद्र प्रमेय प्रमाण और प्रमाता, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा सृष्टि, स्थिति, संहाररूप भेदों के द्वारा दृश्यमान

विश्व को अभेद रूप से अपने में रखकर शान्त, उग्र और घोर आदि मन्त्रों के संरम्भ से ओतप्रोत हैं।

शान्त आदि मन्त्र समूह ज्येष्ठा आदि चार शक्तियों के प्रतीक हैं (श्री गुरु स्तुति में कहा है—अम्बादि रौद्रयन्त्र) :—

शान्त—ज्येष्ठा

उग्र—रौद्री

घोर—वामा

घोरतर—अम्बा

चतुःशक्ति क्रम में शान्त स्वरूप मन्त्र सन्दर्भ में अवस्थिति ज्येष्ठा शक्ति से होती है, जो स्वरूप साक्षात्कार में सहायक बनती है।

घोर स्वरूप मन्त्र संरम्भ में अवस्थिति वामाशक्ति से होती है जो वामाशक्ति संसार ज्ञान प्रदायिनी कही गई है।

उग्र स्वरूप मन्त्र संरम्भ में अवस्थिति रौद्री शक्ति से होती है जो रौद्री शक्ति किंकर्तव्य विमूढ बनाती है और मन को लुभाती है।

घोरतर स्वरूप मन्त्र सन्दर्भ में अवस्थिति अम्बा शक्ति से होती है जो त्रिशङ्कु की तरह अन्तराल में लटकाती है।

भाषानुवाद—उस स्वच्छन्द बहुरूप भैरव को नमस्कार हो जो विकल्प विज्ञान की प्रतीति से अगम्य, निर्विकल्प विज्ञान की सीमा से भी दूर, परप्रमातृ रूप, स्वेच्छा से ही अपने ही आधार पर विश्व उन्मीलन के कारणरूप, महान्, असाधारण रूपधारी, प्रकाश मात्र ही होने से सत् स्वरूप स्थित, घोष आदि दस प्रकार के शब्दों का मूल कारण अर्थात् नाद ब्रह्म रूप होने से सारे जीव वर्ग में प्राणन व शब्दन रूप, और शान्त, उग्र, घोर और घोरतर नामक प्रधान मन्त्र संघाट को अपने ही अन्दर धारण करने वाले हैं॥

(4)

रेवती सङ्गविस्त्रम्भ समाश्लेष विलासिने।

नमः समरसास्वाद परानन्दोपभोगिने॥

अन्वय—रेवती सङ्गविस्त्रम्भ समाश्लेष विलासिने। समरसास्वाद परानन्दोपभोगिने नमः॥

शब्दार्थ—रेवती—रेवती नामक शक्ति के साथ (जो) सङ्गः—मिलन, (तत्र) यः, विस्त्रम्भेण समाश्लेषः—सामरस्य से तन्मयी भाव (उससे), विलासिने—शोभातिशायी, (इसीलिए) समरसास्वाद—सामरस्य के आस्वाद से परानन्द—परम आनन्द के उपभोगिने—उपभोक्ता, जो बने हैं उसको नमः—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—‘रेवती’ नामक शक्ति के साथ मिलन के, अनुत्तर में स्थित अहन्ता इदन्ता से रहित सामरस्य से, जो तन्मयीभाव हुआ है उससे यह भैरव शोभातिशायी बने हैं। अत एव ये सामरस्य-आस्वाद के परम आनन्द के (एक मात्र) उपभोक्ता बने हैं॥

विशेष—रेवती में रेवती शक्ति का उल्लेख आता है। इस शक्ति की मन्त्रोपासना में दो प्रधान बीजाक्षर हैं जो रेवती शब्द के आदि अक्षर ‘रे’ में समाहित है अर्थात् र च, ई च, ते=रे, ई व्याकरण नियमानुसार ‘य’ में बदल जाता है अतः ‘रे’ इस बीजाक्षर में ‘र’ और ‘य’ वर्ण का अस्तित्व है। इन दो बीजाक्षरों की शक्ति का ‘मन्त्र महोदधि’ शास्त्र में तथा ‘कर्पूरस्तवराज’ में विशेष उल्लेख हुआ है।

(5)

भोगपाणे नमस्तुभ्यं योगीशैः पूजितात्मने।

द्वय निर्दलनोद्योग समुल्लासितमूर्तये॥

अन्वय—हे भोगपाणे! द्वय निर्दलन उद्योग समुल्लासित मूर्तये, योगीशैः

पूजितात्मने तुभ्यं नमः॥

शब्दार्थ—हे भोगपाणे — हे भैरव-शक्ति रूप (यहां भोग एक शब्द है पाणि दूसरा शब्द है), द्वय—शक्ति शक्तिमान् की एक रूपता से द्वैतभाव को, निर्दलन—समूल नष्ट करने की (जो), उद्योग—कटिबद्धता है (उससे), समुल्लासित-मूर्तये—अवच्छेद रहित धारणा के कारण सुशोभित स्वरूप वाले। योगीशैः—योग की स्वातन्त्र्य धारणा से सामर्थ्यशाली बने हुए सिद्धों से। कई प्रतियों में योगेशैः पाठान्तर है तात्पर्य एक ही है। पूजितात्मने—निरन्तर पूजे जाने वाले, नमस्तुभ्यं—भैरव को नमस्कार हो।

विशेष—भोगपाणे! यह आमन्त्रण पद है। यहां भोग शब्द का तात्पर्य भैरव है और हाथ का पर्यायवाची पाणि यहां पराशक्ति का वाचक है। अतः भोगपाणिः शब्द भैरव और उसकी शक्ति को जतलाता है। कहा है—भोगो भैरव इत्युक्तो हस्तः शक्तिः परास्मृता।

द्वय—शक्ति और शक्तिमान् को भिन्न-भिन्न समझना ही 'द्वय' अर्थात् द्वैतभाव है।

निर्दलन—इस द्वैतभाव को समूल नष्ट करना। क्योंकि शक्ति और शिव को अलग-अलग समझना ही मल है। कहा है कि शक्त्या विना शिवे सूक्ष्मे नाम धाम न विद्यते।

शक्तस्तु परमेशोऽयं शक्त्या युक्तो यदाभवेत्॥

(वामकेश्वरी मत चतुर्थ पटल)

और भी—

शक्तिस्तु शक्तिमत् रूपात् व्यातिरेकं नवाच्छति।

तादात्म्यं अनयोः नित्यं वह्नि दाहकयोरिव॥

परमेश्वर शिव कुछ करने में तभी समर्थ होता है जब शक्ति उसके संग हो। क्योंकि शक्ति और शक्तिमान् (शिव) अलग नहीं है। इनकी तद्रूपता आग और आगकी दाहक शक्ति के

समान अविच्छेद्य है।

भाषानुवाद—हे भैरवभैरवीरूप ! आपको नमस्कार हो। आप योग धारणा से सामर्थ्यवान् बने हुए सिद्धों से पूजे जा रहे हैं, तथा आप शक्ति और शिव में अभेदभाव को बनाये रखने के कारण द्वैत भावना का समूल उन्मूलन करने से सुशोभित स्वरूप वाले हैं।

(6)

थरत्प्रसर विक्षोभ विसृष्टाखिल जन्तवे।

नमो मायास्वरूपाय स्थाणवे परमेष्ठिने॥

अन्वय—थरत् प्रसर विक्षोभ विसृष्टाखिल जन्तवे (अतएव) मायास्वरूपाय, परमेष्ठिने स्थाणवे नमः।

शब्दार्थ—थरत्—शान्त परमशिव से (उदित हुई जो) प्रसर—जगत् सिसृक्षा (निर्माण करने की इच्छा) (तस्य) विक्षोभः—जो विस्तार है (उससे) विसृष्टा—उत्पन्न किये, अखिल जन्तवः—सारे जीव जन्तु जिसने, (इसलिए) मायास्वरूपाय—माया स्वरूपवाले, स्थाणवे—अचल और अविनाशी, परमेष्ठिने—परमपद में अवस्थित, नमः—भगवान् स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—थरत्—बहुत सी प्रकाशित पुस्तकों में थरत् के स्थान पर सरत् है जो युक्ति संगत नहीं है। 'थरत्' में जो आदि अक्षर 'थ' है वह स्वच्छन्द भैरव मन्त्र अर्थात् अघोर मन्त्र में उपदिष्ट वर्ण माला के आधार पर सही है। 'सरत्' का 'स' अक्षर पूर्णतया असंगत है। इसका रहस्य मैंने पुस्तक के प्राक्कथन में स्पष्ट किया है जो आजतक वंश परम्परा के आधार पर पिता-पुत्र की प्रणाली तक ही हमने सीमित रखा था। कहीं यह रहस्य रहस्य ही न रहे इसी भाव से अपने पूर्वजों से माफी मांग कर तथा नमस्तक हो के मैंने लोकोपकार के लिए यह गुत्थी सुलझाई। आशा है कि मेरे इस दुस्साहस पर ध्यान न देकर मेरे पूर्वज मुझ पर सदा दया दृष्टि रखेंगे।

स्थाणवे—स्थाणुः संस्कृत भाषा में लकड़ी के विशाल व मोटे गोलाकार पिण्ड को कहते हैं। यास्काचार्य ने 'निरुक्त' में इस शब्द का प्रयोग करके लिखा है कि 'नैष स्थाणोरपराधः यदेनमन्धो न पश्यति'॥ स्थाणु भगवान् शंकर का भी पर्यायवाची है। क्योंकि 'तिष्ठति अविचलरूपेण अविनश्वररूपेण यः इति स्थाणुः' अर्थात् निश्चल रूप से तथा अविनश्वर भाव से जो सदा सर्वत्र विद्यमान है उसे स्थाणुः कहते हैं।

परमेष्ठिने—ब्रह्मादि कारणों को अपने में विलीन करके जो परमपद पर आसीन है उसे परमेष्ठी कहते हैं।

भाषानुवाद—विश्व सिसृक्षा के उल्लेख से सारी सृष्टि का निर्माण करने के कारण मायास्वरूप परमपद में आसीन अचल अविनाशी स्फारवान् स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो। कहा भी है—
सिसृक्षोल्लेख निर्माण शक्तित्रितयनिर्भरा।

जगतो येशिता शक्तिः सा स इत्युच्छते स्फुटम्॥

जगत् सिसृक्षा—जगत् उत्पन्न करने की इच्छा (इच्छा शक्ति),
जगत् उल्लेख—जगत् में के प्रत्येक पदार्थ का विभागशः प्रति-
पादन—(ज्ञान शक्ति)। जगत निर्माण फिर जगत रचना (क्रिया शक्ति) इन तीनों शक्तियों से पूर्ण, जो स्वच्छन्द भैरव की ईशिता शक्ति है वही 'स' अर्थात् शान्तस्य अन्तः 'स' शान्त परमशिव के नाम से प्रसिद्ध है। इसी शान्त परमशिव को 'थरत्' इस मन्त्राक्षर ने प्रकाशित किया॥

(7)

घोर संसार सम्भोग दायिने स्थितिकारिणे।

कलादिक्षितिपर्यन्तपालिने विभवे नमः॥

अन्वय—घोर संसार सम्भोग दायिने, स्थिति कारिणे, कलादिक्षितिपर्यन्त-
पालिने, विभवे नमः।

शब्दार्थ—घोर—महान् भीषण जो, संसारः—जन्म-मरणरूप आवाजाही

का कष्ट है (उसका जो) सम्भोगः—अनन्त सुख दुःख आदि का उपभोग है (उसे) दायिने—देने वाला स्थिति कारिणे—पालन-पोषणरूपी विशेष कृत्यकारी, कलादिक्षिति पर्यन्तस्य पालिने—कला तत्त्व से लेकर पृथिवी तत्त्व वर्ग तक सारे तत्त्वों का पालन करने वाले (पर) विभवे—स्वयं संसरणशील भवबन्धनों से विमुक्त (उस), नमः—स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम।

भाषानुवाद—आवागमनरूपी अत्यन्त भयानक कष्टप्रद संसार के सुखदुःखादि उपभोग को देने वाले, पालन-पोषणरूपी विशेष कृत्यकारी, कलातत्त्व से लेकर पृथिवीतत्त्व तक सारे तत्त्ववर्ग का पालन करने वाले, पर स्वयं सांसारिक बन्धनों से विमुक्त रूपवाले आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—संसार—संसरणरूपः संसृतिशीलः संसारः—अर्थात् संसार की संसारता इसी में है कि यह संसरणशील है इसमें कभी अवरोध की दशा नहीं आती है। यदि आयेगी तो यह 'संसार' नाम से वंचित होगा।

कलादिक्षितिपर्यन्त—कलातत्त्व से ऊपर वाले तत्त्व 'शुद्धाध्वा' के नाम से शैव शास्त्र में वर्णित हैं अर्थात् 'शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्धविद्या' ये पांच तत्त्व शुद्धाध्वा या शुद्धसृष्टि कहलाते हैं। क्योंकि ये पांच तत्त्व माया के घेरे से बाहर हैं। कला तत्त्व से लेकर अन्तिम पृथिवी तत्त्व तक के सारे तत्त्व अशुद्धाध्वा के नाम से या अशुद्धसृष्टि के नाम से जाने जाते हैं। क्योंकि इन सारे तत्त्वों पर माया का अंकुश होता है।

स्मरण रहे माया शक्ति के प्रभाव से ही आणवमल, मायीयमल और कार्ममल पनपते हैं।

(8)

रेहणाय महामोह ध्वान्त विध्वंस हेतवे।

हृदयाम्बुज संकोच भेदिने शिवभानवे॥

अन्वय—रेहणाय हृदयाम्बुज संकोच भेदिने महामोह ध्वान्त विध्वंस हेतवे शिवभानवे (नमः)॥

शब्दार्थ—रेहणाय—प्रकाश स्वरूप होने के कारण हृदयाम्बुज—हृदयरूपी कमल की संकोचभेदिने—संकुचित अवस्था का विनाश करने वाले। महामोह—महान् मोहरूपी, ध्वान्त—अन्धकार का, विध्वंस—विनाश करने में, हेतवे—कारण बने हुए, शिवभानवे—स्वच्छन्द भैरवरूपी भास्कर को (नमः)—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—प्रकाशस्वरूप होने के कारण हृदयरूपी कमल की संकोचावस्था को दूर हटाने वाले तथा भीषण मोहान्धकार का विनाश करने में कारण बने हुए स्वच्छन्द भैरवरूप सूर्य को नमस्कार हो।

विशेष—संकोचभेदिने—जैसे सूर्य प्रकाश से संकुचित कमल पूर्णरूप से विकसित होते हैं वैसे ही स्वात्मस्वरूप की अख्याति से बिंधा हुआ साधक का हृदयकमल स्वच्छन्द भैरव के अप्रतिहत प्रकाश से खिल उठता है तथा अख्याति के अन्धकार को मिटाकर चारों ओर से ज्योतिर्मय बनता है।

(9)

भोग मोक्षफलप्राप्ति हेतु योग विधायिने।

नमः परम निर्वाणदायिने चन्द्रमौलये॥

अन्वय—भोग मोक्ष फल प्राप्ति हेतु योग विधायिने, परमनिर्वाण दायिने चन्द्रमौलये नमः॥

शब्दार्थ—भोग—सांसारिक सुख भोग, और मोक्ष—मुक्ति के, फलप्राप्ति हेतु—फल की प्राप्ति के लिए योग विधायिने—संयोग बनाने

वाले, परमनिर्वाण—सायुज्यप्राप्तिरूप उत्कृष्ट निर्वाण को दायिने—
देने वाले, चन्द्रमौलये—सिर पर चन्द्रमा को धारण करने वाले;
स्वच्छन्द भैरव को, नमः—प्रणाम हो।

भाषानुवाद—सांसारिक सुखभोग और मुक्ति को पाने के लिए
(आकस्मिक) साधन प्रदान करने वाले, सायुज्यप्राप्तिरूप उत्कृष्ट
निर्वाण को देने वाले मस्तक पर चन्द्रकला को धारण करने
वाले बहुरूप भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—भोग मोक्ष फलप्राप्ति—त्रिकदर्शन के अनुसार भुक्ति और मुक्ति
का अकाट्य सम्बन्ध है। भोग या मुक्ति के द्वारा अर्थात्
सांसारिक विषय भोगों को संपूर्णरूप से भोगने के साथ-साथ
ही, मुक्ति या मोक्ष की प्राप्ति सरल होती है। इस अवस्था पर
अधिरूढ़ कराने का श्रेय स्वच्छन्द भैरवोपासना को ही है।
अन्य दर्शनों की तरह त्रिक में भोग को हेय समझकर नकारा
नहीं गया है अपितु इसे भी मोक्षप्राप्ति का एक अंग माना गया
है। परम निर्वाण—सायुज्य प्राप्तिरूप उत्तम निर्वाण को। सायुज्य—
भेद और अभेद दृष्टि से शिव के साथ एकत्व में स्थिति ही
सायुज्य स्थिति है। अर्थात् परसंवित् तत्त्व में एकता के साथ
जो रहने का भाव है उसे सायुज्य कहते हैं। मेरे सद्गुरु ईश्वर
स्वरूप स्वामी जी महाराज ने सायुज्य पद की व्याख्या करते
हुए एक दिन कहा कि these are four emancipational
assimilations on the path of devotion:—

(1) सालोक्य, (2) सामीप्य, (3) सार्ष्टिता, (4) सायुज्य

सालोक्य— making constant object of the eyes, the
world of the deity.

सामीप्य—close proximity to Lord.

सारूप्य—absorbing is सारूप्य devotion or assimila-
tion in Lord's semblance.

सार्ष्टिता—free movement.

सायुज्य—resort to oneness with him.

अंग्रेजी भाषा में समझाने के पश्चात् सद्गुरुदेव ने इन चार स्थितियों के कश्मीरी भाषा में चार पर्यायवाची शब्द दिये:—

(1) सालोक्य स्थिति—“नजरि इनायत”, (2) सामीप्य स्थिति—

“शान ब शान रोजुन”, (3) सायुज्य स्थिति—“कुन्यर गछुन”,

(4) सार्ष्टिता—“रट्य बगर अन्दर अचुन” यदुक्तं सारूप्यमेव

सार्ष्टिः। पर त्रिकशास्त्र के अनुसार ये चारों स्थितियां मुक्तिरूप

होने से भोग दशा में ही गिनी जाती हैं मोक्ष कोटि में नहीं।

नित्य दैनिक पूजा कार्यक्रमों में भी पूजा समाप्ति पर तर्पण

करते हुए इस वैदिक मन्त्र का उच्चारण करते हुए उपरोक्त

सालोक्य आदि चारों स्थितियों की प्राप्ति को वह साधक

दुहराता है जो साधक स्वाध्याय पाठ में तत्पर रहता है:—

“नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्रये नमः पृथिव्यै नमः ओषधीभ्यः

नमो वाचे, वाचस्पतये नमो विष्णवे बृहती कृणोमि इत्येता—

सामेव देवतानां सार्ष्टितां सायुज्यतां सालोक्यं सामाप्यमाप्नोति

य एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते॥”

(10)

घोष्याय सर्वमन्त्राणां सर्व वाङ्मय मूर्तये।

नमः शर्वाय सर्वाय सर्वपाशापहारिणे॥

अन्वय—सर्वमन्त्राणां घोष्याय, सर्ववाङ्मय मूर्तये, सर्व पाशापहारिणे

सर्वाय शर्वाय नमः॥

शब्दार्थ—घोष्याय—घोषणीय, या अच्छी तरह से बोधनीय, सर्व—सारे,

मन्त्राणां—मननात् त्राणशीलाः इति मन्त्राः अर्थात् मनन करने

से ही जो साधक की रक्षा करने में तत्पर रहते हैं उन्हें मन्त्र

कहते हैं। इन ऐसे स्वभाववाले मन्त्रों से प्रकाशरूप परमेश्वर ही

वास्तव में सम्बोध्य होता है। सर्ववाङ्मय मूर्तये—वाक् तत्त्वरूप

को, मातृका शक्ति स्वरूपधारी को अर्थात् सारे मन्त्रजाल से संबोधनीय होने के कारण, जो स्वच्छन्द भैरव समस्त उपास्य देवता वर्ग के परविमर्श रूप है और विश्वात्मक विमर्श के बीजभूत हैं। सर्वपाशापहारिणे के स्थान पर सर्वपापापहारिणे भी पाठान्तर है। सर्वपाशापहारिणे—सारे सांसारिक बधनों को हटाने वाले शर्वाय—शंकर का पर्यायवाची शब्द है। जो शिव शरण वरण रूप है उसे शर्व कहते हैं अर्थात् भेदमय मायीय स्वरूप धारण करने से और सृष्टि स्थिति, संहार रूप धारण करने से शिव की सर्वरूपता है। सर्वाय—सर्व स्वरूपा कहा है— यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वः सर्वतश्च यः। यश्च सर्वमयो देवः तस्मै सर्वात्मने नमः॥

भाषानुवाद—सारे मन्त्रों से भलीभांति बोधनीय या घोषणीय समस्त उपास्य देवता वर्ग के परविमर्शरूप और विश्वात्मक विमर्श के बीजभूत, सारे सांसारिक बन्धनों के हटाने वाले सर्वस्वरूप शरण वरण रूप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—शर्वाय—शिव का पर्यायवाची है। मेरे सद्गुरु महाराज ने अघोर भैरव मन्त्र की व्याख्या करते हुए इस शब्द की व्युत्पत्ति “शरु” हिंसायां धातु से की है जिसके अनुसार शर्व रूप में शिव हमारी नकारात्मक प्रवृत्तियों का हनन करके हमें सकारात्मक ओज से ओतप्रोत करते हैं।

(11)

रवणाय रवान्ताय नमस्तेऽराव राविणे।

नित्याय सुप्रबुद्धाय सर्वान्तरतमाय ते॥

अन्वय—सर्वान्तर तमाय ते नमः, रवणाय रवान्ताय अरावराविणे, नित्याय सु प्रबुद्धाय नमस्ते।

शब्दार्थ—रवणाय—जो नाद स्वरूप हैं अर्थात् विमर्शात्मक स्पन्दन है, रवान्ताय—जो नाद का अन्त है अर्थात् नादान्त है, अराव-

राविणे—जो अनाहत नाद रूप है। अरावराविणे में दो शब्द हैं, एक है अराव, दूसरा है राविणे। अराव का तात्पर्य है कि जिस शब्द का उच्चारण, स्थान, करण और प्रयत्न आदि से संभव नहीं है उसे 'अराव' कहते हैं दूसरे शब्द 'राविणे' का अर्थ है कि जो उपरोक्त प्रकार (अराव) के शब्द को धारण करने वाला है उसे अराव रावी कहते हैं। ऐसा शब्द अनाहत नाद रूप है। नित्याय—जो अविकारी है सुप्रबुद्धाय—छिन्नद्वैत दशाः प्रतिष्ठित संविदः सुप्रबुद्धा। स्वच्छन्द तंत्र में कहा है—अलुप्तशक्ति विभवं सुप्रबुद्धं सनातनम्। सर्वान्तर तमाय—जो सर्वान्तर्यामी है।

भाषानुवाद—उस सर्वान्तर्यामी स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो जो नाद रूप, नादान्तरूप, अनाहत नादरूप, नित्य एवं सप्रबुद्ध है।

विशेष—अरावराविणे—अनाहतनाद। यह समूचे 'अ' से 'क्ष' तक के मातृका मण्डल की मौलिक विभाग रहित परविमर्शमयी अवस्था है। यह अव्यक्तप्राय है। क्योंकि यह अपने मौलिक स्पन्दना रूप में ही स्थिर है। पश्यन्ती आदि वाणियों द्वारा वैरवरी रूप पर पहुंचा स्थूल ध्वनिरूप वर्ण नहीं बना है। (तन्त्रालोक व्याख्याकार जयरथ)।

अभिनवगुप्त का कथन भी इसी प्रकार का है—

एको नादात्मको वर्णः सर्व वर्ण विभागवान्।

सो ऽनस्तमित रूपत्वात् अनाहत इहोदितः॥ (तं. 6.216)

सुप्रबुद्ध—जब सारी द्वैत दशा छिन्नभिन्न होती है और संवित् शक्ति के स्फार में सुस्थिति होती है तभी सुप्रबुद्ध दशा का साक्षात्कार होता है। अतः यह विशेषण स्वच्छन्द भैरव के साथ युक्ति-युक्त लगता है।

(12)

घोष्याय परनादान्तश्चराय खचराय ते।

नमो वाक् पतये तुभ्यं भवाय भवभेदिने॥

अन्वय—घोष्याय, परनादान्तः चराय, खचराय ते, वाक् पतये, भवाय
भवभेदिने तुभ्यं नमः॥

शब्दार्थ—घोष्याय—घोषणीय, अथवा सम्बोध्य अथवा पठनीय, परनाद—
सर्वोत्तम नाद के अर्थात् स्वरूप विमर्शमय परनाद के, या अहं
परामर्शात्मक गंभीर स्थान में अन्तःचराय—मध्य चारी, अर्थात्
सर्वोत्तम नाद के अधिष्ठाता अथवा प्रत्येक प्राणी के अन्तस् में
विचरण करने वाला, खचराय—खे—शून्ये, चरति इति खचरः
तस्मै खचराय अर्थात् विकल्प शून्य अवस्था में संसरण शील,
ते—आप बहुरूप को, वाक् पतये—वक्ति स्वरूपं परामृशति
इति वाक् अर्थात् स्वरूप परामर्शन ही वाक् वाणी का स्वभाव
है। अतः पूर्णतामयी पराशक्ति ही परिपूर्ण परमेश्वर की वाणी
है। ऐसी वाणी के स्वामी को वाक्पति कहते हैं।

भवाय—जगतरूप बने हुए, भवभेदिने—संसार के बन्धनों से
विमुक्त करने वाले तुभ्यं नमः—तुझे नमस्कार हो।

भाषानुवाद—सम्बोध्य या पठनीय, अहं परामर्शात्मक गहन स्थान के
अधिष्ठाता, प्रत्येक प्राणी के अन्तस् में विचरण करने वाले,
विकल्पशून्य अवस्था में भी संसरणशील, परावाणी के स्वामी,
विश्वमय बने हुए, तथा संसार के बन्धनों से विमुक्त कराने
वाले, आप स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो।

(13)

रमणाय रतीशाङ्गदाहिने चित्रकर्मणे।

नमः शैलसुताभर्त्रे विश्वकर्त्रे महात्मने॥

अन्वय—रमणाय रतीशाङ्ग दाहिने, चित्रकर्मणे विश्वकर्त्रे, महात्मने
शैलसुताभर्त्रे नमः।

शब्दार्थ—रमणाय—सबों को आह्लादित करने वाले रतीशाङ्ग= रति+ईश+
अङ्ग+रति—रति (कामदेव की पत्नी का नाम है) रति का
ईश—स्वामी कामदेव है, अङ्ग—उस कामदेव के शरीर को,

दाहिने—जलाने वाले चित्रकर्मणे—नाना वैचित्र्य से युक्त सृष्टि, स्थिति, संहार पिधान, अनुग्रहात्मक पांच कृत्यों को करने वाले। विश्वकर्त्रे—सारे संसार का निर्माण करने वाले अर्थात् अपने स्वातन्त्र्य से विश्वाकार बने हुए, शैलसुताभर्त्रे—पर्वतपुत्री उमा के पति, महात्मने—महनीय आत्मा श्री स्वच्छन्द भैरव के लिए नमः—प्रणाम हो।

भाषानुवाद—सबों को आह्लादित करने वाले, कामदेव के शरीर को भस्म करने वाले, नाना वैचित्र्यपूर्ण सृष्टि, स्थिति, संहार, पिधान तथा अनुग्रहात्मक पांच कृत्यों को (लगातार) करने वाले, अपने स्वातन्त्र्य से विश्वाकार बने हुए, पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती के प्राणनाथ, महनीय स्वरूपधारी श्री स्वच्छन्द भैरव के लिए प्रणाम हो।

विशेष—रमणाय का अर्थ सर्वान्तरयामी भी है अथवा मनोरंजनकारी भी है। रतीशाङ्ग दाहिने—भगवान् भोलेनाथ के तीसरे नेत्र से उत्पन्न पावक ज्वाला से भस्मीभूत कामदेव की पत्नी रति अपने पति के शरीर रक्षा के लिए भगवान् शंकर से अनुनय विनय करती हुई जब क्रन्दन करने लगी तो आशुतोष ने रति पर दया करके कामदेव को मनसिज नाम देकर समस्त प्राणि-वर्ग के मन में सदा स्थित रहने का वरदान दिया। इसलिए भगवान् शंकर को “रतीशाङ्गदाही” नाम से भी पुकारा जाने लगा।

(14)

तमः पारप्रतिष्ठाय सर्वान्तपदगाय ते।

नमः समस्त तत्त्वाध्वव्यापिने चित्स्वरूपिणे॥

अन्वय—तमः पारप्रतिष्ठाय, सर्व अन्त पदगाय समस्त तत्त्व व्यापिने, समस्त अध्व व्यापिने, चित्स्वरूपिणे ते नमः॥

शब्दार्थ—तमः—महान् अन्धकार का जो, पार—पर्यन्त है अर्थात् अन्धकार

का पर्यन्त तो प्रकाश है क्योंकि जहां अन्धकार का अन्त है वहां प्रकाश है। प्रतिष्ठाय—उस प्रकाश में जिसकी अवस्थिति है अर्थात् जो स्वप्रकाशरूप है। कहा है—“यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुः घोरात् संसारबन्धनात्” अर्थात् जिस स्वप्रकाश को जानकर प्राणी भीषण सांसारिक बन्धनों से विमुक्त होता है। सर्व अन्तः पदगाय—सबों का अन्त ‘सर्वान्त’ है। उस सर्वान्त पद पर जाने वाले को ‘सर्वान्त पदगाय’ कहते हैं अर्थात् जो समस्त उपाधि शंकातङ्कों से विवर्जित है। समस्त तत्त्व व्यापिने—जो शैवदर्शन अभिमत छत्तीस तत्त्वों में व्याप्त है अर्थात् शिव तत्त्व से लेकर पृथिवी तत्त्व तक जो छत्तीस तत्त्व हैं उनमें जो व्याप्त है। (सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान के विषय में तन्त्रालोक का नवां आह्निक दृष्टव्य है)। समस्त अध्वा व्यापिने—सारे छः अध्वाओं में जो व्याप्त है। छः अध्वा इस प्रकार हैं :—
 पदाध्वा, मन्त्राध्वा, वर्णाध्वा, भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा।
 चित्स्वरूपिणे—पूर्ण अहन्ता परामर्शमय होने से जो चित् स्वरूप है।

भाषानुवाद—स्वप्रकाश स्वरूप, समस्त उपाधिशंकातङ्कों से रहित शिवशक्त्यादि छत्तीस तत्त्वों में तथा पदाध्वा आदि छः अध्वाओं में व्याप्त, पूर्णाहन्तापरामर्शमय स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो।

विशेष—‘तमः’ का अर्थ देहाद्यभिमानरूप मल या अज्ञान है जो अन्धकार की तरह घनीभूत होता है। यही मल आवाजाही का कारण भूत है और यही आणव, मायीय और कर्ममल से विख्यात है। ऐसे अन्धकार बहुल मल राहित्य में जिसकी अवस्थिति है वही तमः पार प्रतिष्ठाय से अभिप्रेत है।

रेवद्वराय रुद्राय नमस्तेऽरूपरूपिणे।

परापर परिस्पन्द मन्दिराय नमो नमः॥

अन्वय—रेवत् वराय, रुद्राय अरूपरूपिणे ते नमः। पर अपर परिस्पन्द मन्दिराय नमो नमः।

शब्दार्थ—रेवत्—‘र’ और ‘य’ बीजवर्ण वालों में वराय—उत्तम, रुद्राय—रुद्ररूप, अरूपरूपिणे—रूपातीत—शुद्ध संविन्मय आत्मा ते नमः—तुझे प्रणाम हो। परापर—पर—शान्त शिवस्वभाव को ‘पर’ कहते हैं। अपर—तत् पश्चात् उदित हुए शक्ति स्वभाव को ‘अपर’ कहते हैं। परिस्पन्द—इन दोनों को उल्लास के मन्दिराय—विश्राम स्थान रूप बहुरूप को नमो नमः—बार-बार नमस्कार हो।

भाषानुवाद—‘र’ और ‘य’ बीजवर्ण वालों में सर्वोत्तम, रुद्ररूप, शुद्धसंविन्मय, शिव और शक्ति स्वभाव के उल्लास के विश्रान्ति स्थान बने हुए आप स्वच्छन्द भैरव को कोटि-कोटि नमन।

विशेष—रे=र+य—‘र’ बीजाक्षर और ‘य’ बीजाक्षर वत्—जिनमें हो, उनमें वरः—सर्वश्रेष्ठ, ‘र’ बीजाक्षर अग्रिबीज माना जाता है। कहा है—‘र’ दाहकं अग्रिबीजं,—आभासकत्वात्। अतः ‘र’ वर्णः—अग्रिवर्णः। ‘र’ बीजाक्षर के सिद्ध होने पर दाहकत्व की गुणवत्ता स्वयं ही प्रस्फुटित होती है। ‘य’ बीजाक्षर वायुबीज माना जाता है। कहा है—‘य’ शोषकारित्वं स्तम्भकत्वं च। वायु का गुण शोषण और स्तम्भन है अतः ‘य’ बीजाक्षर के सिद्ध होने पर साधक इन दो गुणों से विभूषित होता है। परात्रीशिका शास्त्र में भी कहा है कि—वाय्वाग्नि सलिलेन्द्राणां धारणानां चतुष्टयम्। तन्त्रालोक में कहा है कि—

असौ मातृकाक्रमे यर्णानां (य+र बीजों का)

तत्त्वैः सह समन्वयः शाम्भवोपाय अंगभूतः॥

रुद्राय—ईश्वर भट्टारक ही माया में अवतीर्ण होके रुद्र कहा

जाता है। यह पर और अपर दशाओं में ईश्वर का अपर दशात्मक स्वरूप है। कहा है—सा च रुद्रदशा शिवतत्त्वस्य अपरावस्था। (ई०प्र०)

(16)

भरिताखिल विश्वाय योगगम्याय ते नमः।

नमः सर्वेश्वरेशाय महाहंसाय शम्भवे॥

अन्वय—भरित अखिल विश्वाय, योग गम्याय ते नमः। सर्व ईश्वर ईशाय महाहंसाय, शम्भवे नमः॥

शब्दार्थ—भरित—अपनी ऐश्वर्य शक्ति से ओत-प्रोत किया है, अखिल—सारे, विश्वाय—चराचर रूप जगत् को (जिसने) योग गम्याय—योगाभ्यास से ही पाने योग्य, सर्वेश्वरेशाय—सबों को नियन्त्रण में रखने वालों के भी अधिपति, महाहंसाय—महाहंस चिद्रूप, नमः शम्भवे—स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

भाषानुवाद—अपनी ऐश्वर्य शक्ति से जिसने सारे चराचररूप जगत् का धारण पोषण व पालन किया है, जो योगाभ्यास के द्वारा ही जाने जाते हैं, जो सर्वेश्वरों के भी शास्ता हैं और जो महाहंस चिद्रूप हैं, उस स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—भरित—इस में संस्कृत व्याकरण के 'भृ' धातु का जो प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है धारण, पालन और पोषण। अतः 'भरित' से ये तीनों क्रियायें अभिप्रेत हैं। जो सारे विश्व का धारण, पालन और पोषण करता है।

योग—पातञ्जलि योगसूत्र के अनुसार योग की परिभाषा इस प्रकार है—'योगः चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् मन की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहते हैं। अतः योगगम्याय का अर्थ है कि जो स्वच्छन्द भैरव चित्तवृत्ति निरोधात्मक योग के द्वारा ही जाने जाते हैं।

महाहंसाय—परमेश्वराय, हंसः—हान समादान धर्मत्वात् हंसः अर्थात् हान-छोड़ना, समादान-लेना, धर्म होने से हंस को हंस कहा जाता है। हंस जैसे क्षीर नीर में क्षीर (दूध) का समादान और नीर (जल) का हान करता है। इसी प्रकार सारे प्रमाता स्व स्व उचित सृष्टि संहार रूप हानादान धर्म के कारण 'हंस' कहे जाते हैं। परन्तु उन सब प्रमाताओं का भी सृष्टि संहार करने वाला स्वच्छन्द भैरव 'महाहंस' कहा जाता है। रुद्र-क्षेत्रज्ञवर्ग के लिए द्रष्टव्य शिवसूत्र का मंगलाचरण श्लोक। रुद्र क्षेत्रज्ञ वर्ग से इसकी अधिक महत्ता होने से ही इसे 'महा' उपाधि से विभूषित किया है अर्थात् 'महाहंसः'॥

(17)

चर्च्याय चर्चनीयाय चर्चकाय चराय ते।

रवीन्दु सन्धि संस्थाय महाचक्रेश ते नमः॥

अन्वय—हे महाचक्रेश! चर्च्याय चर्चनीयाय चर्चकाय, चराय रवि इन्दु सन्धि संस्थाय ते नमः।

शब्दार्थ—हे महाचक्रेश! यह आमन्त्रण पद है। हे स्वच्छन्द भैरव! आप शुद्धिविद्या स्वरूप हैं अतः शुद्ध विद्या के उदय से आप में स्वतः ही चक्रेश्वरत्व सिद्धि आ समाई है। परिणामस्वरूप सीमित सिद्धियों के स्थान पर असीमित वैश्विक सिद्धियां प्राप्त हुई हैं। महाचक्रेश पदवी पर आरूढ़ होके संभव को असंभव और असंभव को संभव बनाने की गुणवत्ता से आप विभूषित हैं। चर्च्याय—चर्चा करने के योग्य अथवा स्मरण करने के योग्य चर्चनीयाय—परामर्श के योग्य, चर्चकाय—चेतन स्वभाव वाले, चराय—संसरणशील अथवा स्पन्दस्वरूप, रवि—सूर्य अर्थात् प्राण इन्दु—चन्द्रमा अर्थात् अपान, सन्धि संस्थाय—प्राणापान के सन्धि स्थान में (सुषुम्ना में) अवस्थित, ते नमः—आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम।

भाषानुवाद—हे महाचक्रेश! आप को प्रणाम हो। आप स्मरण करने के योग्य हो, चेतनस्वभाव वाले हो, परामर्शनीय हो, स्पन्दस्वरूप हो तथा (साधक) के प्राणापान के सन्धि स्थान में अवस्थित हो।

विशेष—शिवसूत्र में कहा है—‘शुद्ध विद्योदयात् चक्रेशत्व सिद्धिः।’ महाचक्रेश पदवी पर आरूढ़ होना अननुभूत व असंभव सिद्धियों का स्वामी बनना है। स्वच्छन्द भैरव को महाचक्रेश कहने का तात्पर्य यह है कि यह साधक की इन्द्रिय वृत्तियों का नियमन करने के साथ-साथ उसकी अन्तर्मुखी वृत्तियों में भी स्फुरत्ता लाता है। परिणामस्वरूप चित्तवृत्ति निरोध की उन्मुखता दिन-प्रति-दिन बल पकड़ती जाती है।

‘रवीन्दु’ से यहां प्राणापान अभिप्रेत है। सन्धि संस्थाय—प्राणाचार और अपानचार की गति में सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिशीलनीय अवकाशस्थान को सन्धिस्थान कहते हैं। इसी सन्धि स्थान के अभ्यास की परिपक्वता आने पर गुरुदीक्षा का बीज अंकुरायमाण होकर प्रस्फुटित, पल्लवित और पुष्पित होता है।

(18)

सर्वानुस्यूतरूपाय सर्वाच्छादक शक्तये।

सर्वभक्ष्याय शर्वाय नमस्ते सर्ववेदिने॥

अन्वय—सर्व अनुस्यूत रूपाय, सर्व आच्छादक शक्तये, सर्वभक्ष्याय, शर्वाय सर्ववेदिने ते नमः॥

शब्दार्थ—सर्व—सभी में, या समस्त भाव वर्ग में, अनुस्यूत रूपाय—ओत प्रोत रूपवाले, अर्थात् संसार के सभी पदार्थ भवन्मयता से परिपूर्ण हैं। कहा भी है—‘त्वन्मयमेतदशेषं इदानीं०॥’ सर्व—हर स्थान पर, आच्छादकशक्तये—आच्छादिका शक्ति से जो परिपूर्ण है, सर्वभक्ष्याय—समस्त प्रमेय जगत् को अपने में ही विलीन करने वाले। सर्ववेदिने—सब कुछ जानने वाले।

भाषानुवाद—समस्त भाव वर्ग में ओतप्रोत रहने वाले, आच्छादिका शक्ति से सम्पन्न, समस्त प्रमेय जगत् को अपने में ही विलीन करने वाले, सर्वात्मा, और सब कुछ जानने वाले आपको प्रणाम हो।

विशेष—शर्वाय के स्थान पर सर्वाय भी पाठान्तर है। सर्वानुस्यूतरूपाय—आचार्य उत्पल देव ने भी कहा है—योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं पश्यतीश निखिलं भवत् वपुः। (शिवस्तोत्रावली)।

(19)

रम्याय वल्लभाक्रान्त देहार्थाय विनोदिने।

नमः प्रपन्नदुष्प्राप्य सौभाग्यफलदायिने॥

अन्वय—रम्याय, विनोदिने, वल्लभा आक्रान्त देह अर्थाय, प्रपन्न दुष्प्राप्य सौभाग्यफलदायिने नमः।

शब्दार्थ—रम्याय—मनोहर, विनोदिने—अपनी चेष्टाओं से सबों को आनन्दित करने वाले, वल्लभा—प्रियतमा से, आक्रान्त—आवृत है, देहार्थाय—आधा शरीर भाग जिसका, प्रपन्न—शरण में आये हुए भक्तों के दुष्प्राप्य—बड़ी कठिनता से प्राप्त होने वाले सौभाग्यफल-दायिने—भुक्ति मुक्ति रूपी फल देने वाले स्वच्छन्द भैरव को, नमः—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—मनोहर, आनन्ददायक, अर्धनारीश्वर रूप, अपनी शरण में आये हुए भक्तों को अप्राप्य भुक्ति-मुक्ति रूपी फल सुलभता से प्रदान करने वाले, स्वच्छन्द नाथ भैरव को नमस्कार हो।

विशेष—रम्याय—स्वच्छन्द भैरव के दूसरे रूप वामदेव का अर्थ 'रम्याय' से अभिप्रेत है। रम्याय का शब्दार्थ सुन्दर मनोहर है, वामदेव का भी अर्थ सुन्दरदेव है। 'वाम' सुन्दर का भी पर्याय है। कहा है कि 'सौन्दर्य प्रदत्वेन सुभगत्वेनापि च वामदेवः।' स्वच्छन्द भैरव के पांच मुख हैं। उनमें वामदेव नामक मुख उत्तराभिमुख है। कहा है कि रहस्यात्मक पांच बीजाक्षरों से स्वच्छन्द भैरव

के पांच मुखों की अभिव्यक्ति हुई है। वे पांच बीजाक्षर इस प्रकार हैं—

क्षं, यं, रं, वं, लं

‘क्षं’ बीजाक्षर से ‘ईशान’ नामक मुख की अभिव्यक्ति ईशान कोण की ओर हुई है। कहा है—क्षं ईशानवक्त्राय नमः ईशे। ‘यं’ बीजाक्षर से तत्पुरुष नामक मुख की अभिव्यक्ति पूर्व कोण की ओर हुई है। कहा है—यं तत्पुरुष वक्त्राय नमः पूर्वे। ‘रं’ बीजाक्षर से अघोर भैरव नामक मुख की अभिव्यक्ति ‘दक्षिण दिशा की ओर हुई है। कहा है—रं अघोर हृदयाय नमः दक्षिणे। ‘वं’ बीजाक्षर से वामदेव स्वरूप मुख की अभिव्यक्ति उत्तर की ओर हुई है। कहा है—वं वामदेवाय नमः उत्तरे। और ‘लं’ बीजाक्षर से सद्योजात मूर्ति की अभिव्यक्ति पश्चिम की ओर हुई है। कहा है—लं सद्योजात मूर्तये नमः पश्चिमे। इस प्रकार ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव और सद्योजात ये स्वच्छन्द भैरव के पांच मुखों के पांच दिशाओं में स्थित पांच भिन्न-भिन्न नाम तन्त्ररहस्यप्रक्रिया में वर्णित हैं।

‘वियोगिने’ भी विनोदिने के स्थान पर पाठान्तर है।

(20)

तन्महेशाय तत्त्वार्थवेदिने भवभेदिने।

महाभैरवनाथाय भक्तिगम्याय ते नमः॥

अन्वय—तत्त्वार्थवेदिने, भवभेदिने महेशाय भक्तिगम्याय तन् महा भैरवनाथाय ते नमः॥

शब्दार्थ—तन्—उस, महेशाय—महेश्वर के लिए, तत्त्व—सत् और असत् दो प्रकार के रूप तत्त्व के, अर्थ—वास्तविक अर्थ को वेदिने—जानने वाले, भवभेदिने—जन्म मरण रूप चक्र से विमुक्ति दिलाने वाले, महाभैरवनाथाय—समस्त छत्तीस तत्त्वमय विश्व को संवित् आधार पर धारण करता हुआ परिपूर्ण परमेश्वर

(उन्हें), भक्तिगम्याय—समावेश रसोन्मेष शालिनी भक्ति से ही जानने योग्य।

भाषानुवाद—सत् और असत् तत्त्व के वास्तविक अर्थ को जानने वाले, जन्ममृत्युरूप चक्र से छुटकारा दिलाने वाले, समावेशशालिनी भक्ति से जानने योग्य तथा महेश्वर उस परिपूर्ण परमेश्वर स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—भैरव शब्द की व्याख्या प्रधान शैवशास्त्रों में तथा प्रधान तन्त्रों में विस्तार से की गई है। तन्त्रालोक के प्रथम आह्निक में (विश्वं बिभर्ति पूरण धारण योगेन से लेकर भैरव इति गुरुभिरिमैरन्वर्थैः संस्तुतः शास्त्रे) तक पांच कारिकाओं में भैरव शब्द की असाधारण व्याख्या की है। 'श्रीमालिनीविजय वार्तिक' में भी भैरव शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

तत्त्वे तत्त्वे स्वेच्छया देव देवः
सर्वा सर्वा भूमिं आलम्बमानः।
पूर्णेकात्मा पूर्ण संवित् स्वरूपः
श्रीमान्शास्त्रे भैरवोऽसौ निरुक्तः॥

(21)

शक्तिगर्भ प्रबोधाय शरण्यायाशरीरिणे।

शान्ति पुष्ट्यादि साध्यार्थ साधकाय नमोस्तुते॥

अन्वय—शक्तिगर्भ प्रबोधाय अशरीरिणे, शरण्याय, शान्ति पुष्टि आदि साध्य अर्थ साधकाय ते नमोऽस्तु॥

शब्दार्थ—शक्तिगर्भ—विमर्श शक्ति ही जिसका सार है। इसलिये प्रबुद्धाय—प्र—सर्वोत्कृष्ट, बुद्धाय—प्रकाशरूप जो है। अशरीरिणे—परम प्रकाश विमर्शमय होने से जिसकी देहसत्ता नहीं है, शरण्याय—शरण में आये हुए भक्तों की रक्षा करने वाले।

शान्ति पुष्ट्यादि साध्यार्थ—नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये

तीन प्रकार के कर्म कहे गये हैं। इनमें से काम्य कर्म वे हैं जिनकी सिद्धि के लिए कुछ उपाय प्रयोग में लाये जाते हैं। पारिवारिक शान्ति, आत्मिक शान्ति, शारीरिक पुष्टि, मानसिक पुष्टि आदि जितने भी साध्य प्रयोजन हैं उन सभी कार्यों को, साधकाय—सिद्ध करने वाला या पूर्ण करने वाला स्वच्छन्द भैरव ही है, ते नमोस्तु—ऐसे स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

भाषानुवाद—विमर्श शक्ति रूपी सारवत्ता से उत्कृष्ट प्रकाशमय अतएव देहसत्ताहीन, शरणागतों के रक्षक, शान्ति, पुष्टि (पोषणात्मक कर्म) आदि साध्य काम्य कर्मों को सिद्ध करने वाले स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो।

विशेष—शक्तिगर्भ प्रबोधाय—शक्ति से यहां विमर्श शक्ति अभिप्रेत है। प्रबोध—परम प्रकाश का सूचक है। अतः जो स्वच्छन्द भैरव प्रकाश विमर्शमय है उसी भाव को जतलाने वाला 'शक्तिगर्भ प्रबोधाय' शब्द है।

अशरीरिणे—न शरीरं वर्तते यस्य तस्मै । अर्थात् जिसे देह प्रतीति का सर्वथा अभाव है वह है अशरीरी। अपरिमित शक्तिशाली प्रकाश के सामने किसी स्थूल पदार्थ का अस्तित्व असंभव है। अतः स्वयं प्रकाश विमर्शमय पुंज इसमें केवल प्रकाश ही प्रकाश है, प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं। पुष्टि—निरामय (रोग रहित) बनाकर शारीरिक अभिवृद्धि में स्थिरता लाकर काम्यकर्मों की सफलता दिलाने का श्रेय स्वच्छन्द भैरव को ही है इसीलिए 'शान्ति पुष्ट्यादि साध्यार्थ साधकाय' विशेषण से ये विभूषित हैं।

(22)

रवत्कुण्डलिनी गर्भ प्रबोध प्राप्त शक्तये।

उत्स्फोटना पटु प्रौढ परमाक्षर मूर्तये॥

अन्वय—रवत् कुण्डलिनी गर्भ प्रबोध प्राप्त शक्तये, उत्स्फोटना पटु

प्रौढ परम अक्षर मूर्तये (नमः इतिशेषः)।

शब्दार्थ—खत्—उन्निद्रा अर्थात् जागरित कुण्डलिनी—चित्स्पन्दरूपा संवित् पारमेश्वरी शक्ति। अथवा सृष्टि स्थिति आदि पंचकृत्यों की बीजभूता परमाह्लाद चमत्कारमयी चैतन्य विभूति कुण्डलिनी कही जाती है। कश्मीर शैव दर्शन में कुण्डलिनी के तीन रूप हैं:—शक्ति कुण्डलिनी, विश्व कुण्डलिनी या पराकुण्डलिनी, प्राणकुण्डलिनी। गर्भ प्रबोध—गर्भित अखण्ड बोध के कारण प्राप्त शक्तये—असीम शक्ति को प्राप्त किये उत्स्फोटना—विश्व स्फार क्रीडा में, पटु प्रौढ—चतुर और धुरीण, परमाक्षरमूर्तये—सर्वोत्कृष्ट अक्षर प्रणवनाद या मातृकाचक्र रूप को धारण किये आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

भाषानुवाद—उन्निद्रित कुण्डलिनी शक्ति में गर्भित, अखण्ड बोध के कारण असीम शक्ति को धारण किये हुए, विश्व स्फार क्रीडा में चतुर और धुरीण, सर्वातिशायी अविनश्वर मूर्ति वाले आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—खत्कुण्डलिनी—मूलाधार में चार अरों वाले चार बीजाक्षरों वं, शं, षं, सं, से अंकित कमलाकार चक्र कर्णिका में त्रिकोण शृङ्गाटक पर (कश्मीरी सिंघाडा) स्थित, मूलाधार से उदीयमान सव्यवामभागों में इडा पिंगला से ब्रह्मरन्ध्र तक ब्रह्मनाडी या मध्यनाडी के रूप में आवृत उदीयमान हजारों सूर्यों के समान प्रकाशमान, कोटि विद्युत (बिजली) समानभास्वर, अठतीस कला रूपिणी, पचास वर्ण शरीरा (अ से क्ष तक) साढ़े तीन वलयों में स्थित, सर्पाकार, मृणाल के धागे के समान पतली ऊपर की ओर मुख की हुई, सुप्तावस्था में स्थित पराशक्ति संवित् देवी ही कुण्डलिनी शक्ति कही जाती है जिसे सहज में, उपदिष्ट गुरु नाद से जगाना ही खत्कुण्डलिनी शब्द से अभिप्रेत है। गर्भप्रबोध से तात्पर्य है कि जिसमें प्रकाश स्वतः स्थित है,

प्राप्तशक्तये— प्रकाशमय होने से जो विमर्श शक्ति से आवृत है अतः जो स्वच्छन्द भैरव प्रकाशविमर्शमय है।

स्मरण रहे मेरे सद्गुरु महाराज ने एक दिन बताया कि उन्होंने कुण्डलिनी-शक्ति साक्षात्कार में अरों का न कि दलों का साक्षात्कार किया है।

उत्स्फोटना—विश्वस्फार प्रक्रिया का पदान्तर है।

(23)

समस्त व्यस्त संग्रस्त रश्मिजालोदरात्मने।

नमस्तुभ्यं महामीन रूपिणे विश्वगर्भिणे॥

अन्वय—समस्त व्यस्त रश्मिजाल उदर आत्मने संग्रस्त, विश्वगर्भिणे महामीन रूपिणे तुभ्यं नमः॥

शब्दार्थ—समस्त—समष्टि रूप से, व्यस्त—व्यष्टि रूप से, संग्रस्त—सं—अच्छी तरह से, ग्रस्त—आत्मसात् किया है। रश्मिजाल—शक्तिपुंज को अर्थात् सारे शक्तिचक्र को। उदरात्मने—अपने भीतर, विश्वगर्भिणे—सारे जगत् को धारण करने वाले, महामीन रूपिणे—महाशक्तिरूप।

भाषानुवाद—एकत्रित या बिखरे हुए शक्तिपुंज की साररूपता को जिसने अच्छी तरह से आत्मसात् किया है, सारे विश्व को अपने भीतर किये हुए, उस महाशक्तिरूप स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो।

विशेष—तन्त्रों में 'महामीन' महाशक्ति का ही पर्याय है। वैसे तो 'महामीन' का शाब्दिक अर्थ बड़ी मछली है। इस सन्दर्भ में अर्थ करने पर महामीन रूप से नारायण ने भी पृथिवी को जल में से उद्धृत किया था। जल और मीन का नित्य सम्बन्ध है एवमेव जलरूप जगत् को अपने में धारण करके मीनवत् चलायमान समस्त करण वृन्द को (इन्द्रियों को) अपने में जिसने सुस्थित रखा है। उस स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम। जैसे

जल की जड़ता भी चेतन मीन के अकाट्य संपर्क से चेतनापूर्ण प्रतीत होती है उसी प्रकार महाचैतन्य पुरुष के अस्तित्व से जड़ जगत् भी चेतनवत् प्रतीत होता है।

महामीन शब्द के प्रयोग से स्वच्छन्द भैरव के, जिन विविध आयामों की ओर संकेत किया गया है, साधक उनका स्वयं अनुमान करे।

(24)

रेवारणि समुद्भूत वह्निज्वालावभासिने।

घनीभूत विकल्पात्म विश्वबन्धविलापिने॥

अन्वय—रेवा अरणि सम् उद्भूत वह्निज्वाला अवभासिने, घनीभूत विकल्प आत्म विश्वबन्ध विलापिने।

शब्दार्थ—रेवा—सर्वत्र व्यापिनी शक्ति, अरणि—एक प्रकार की लकड़ी जो अत्यन्त सूखी होने से जरा सी रगड़ खाने से प्रज्वलित होती है। अरणिकाष्ठ ही दावाग्रि (जंगल की आग) का प्रमुख कारण होता है। स—अच्छी तरह से, उद्भूत—आविर्भूत हुई, वह्निज्वाला—आग की लपटें, उनसे अवभासिने—भासित, घनीभूत—अति घना दिखने वाले, विकल्पात्म—विकल्पात्मक, विश्वबन्ध—सांसारिक बन्धनों को विलापिने—नष्ट करने वाले। स्वच्छन्दाय नमः इति शेषः।

भाषानुवाद—सर्वत्र व्यापिनी रेवा शक्तिरूपी अरणि से प्रकट हुई आग की लपटों से भासित, अत्यन्त प्रगाढ़ रूपवाले संकल्प विकल्पात्मक सांसारिक बन्धनों का विनाश करने वाले स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—‘रेवृ’ धातु का अर्थ है ‘रेवृ प्लवगतौ’ अर्थात् उछल-उछल कर सर्वत्र फैलना एवं सर्वत्र व्यापिनी शक्ति ही रेवा से अभिप्रेत है। ज्वाला स्वरूप ही इस रेवा शक्ति का ध्यान है। रगड़ खाने

से या हवा के द्वारा टकराये जाने से जैसे आग अरणि काष्ठ में से प्रकट होती है और घने जंगल को भस्मसात् करती है इसी तरह से रेवा नामक व्यापिनी शक्ति के छूने मात्र से ही अविद्या का तमस् अंधेरा छूमंतर होता है। श्री स्वच्छन्द नाथ ही इस शक्ति के नियामक हैं।

(25)

भोगिनी स्यन्दना रूढि प्रौढिमालब्ध गर्विणे।

नमस्ते सर्वभक्ष्याय परमामृतलाभिने॥

अन्वय—भोगिनी स्यन्दन आरूढि, प्रौढिमा लब्ध गर्विणे, सर्वभक्ष्याय परम अमृत लाभिने नमः ते।

शब्दार्थ—भोगिनी—कुण्डलिनी शक्ति जिसका निवास मूलाधार है। स्यन्दन—रथ पर, आरूढि—आरूढ़ होने के फलस्वरूप, प्रौढिमा—प्रौढ़ता से भरपूर होने से, लब्ध—प्राप्त किया है, गर्विणे—गर्व—अभिमान जिसने परमामृत लाभिने—ललाटस्थ चन्द्रकला के परम अमृत के आह्लाद को देने वाले। सर्वभक्ष्याय—सारे प्रमेय जगत् (universe of objects) का विनाश करने वाले, नमः ते—श्री स्वच्छन्द नाथ को नमस्कार हो।

भाषानुवाद—कुण्डलिनी शक्ति रूपी रथ पर आरूढ़ होने के फलस्वरूप प्राप्त प्रौढ़ता से पूर्ण स्वात्माभिमानी बने सारे प्रमेय जगत् का भक्षक, ललाटस्थ चन्द्रकला को धारण करने वाले स्वच्छन्द-नाथ भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—सर्वभक्ष्याय—सारे प्रमेय जगत् (universal objects) का अपने में लीन करने वाले, परमामृत लाभिने—प्राणाभ्यास क्रम में मध्यनाडी के स्थान पर अधो कुण्डलिनी और ब्रह्मरन्ध्र के स्थान पर ऊर्ध्व कुण्डलिनी को अधोद्वादशान्त और ऊर्ध्व-द्वादशान्त कहते हैं। संकोच विकास शील होने से ये शाक्त पद्वि कहलाते हैं। उच्चकोटि के योगाभ्यासी साधकों की

सर्वसाधारण प्रणापानगति विलीन हुई होती है। उनकी प्राणशक्ति उदानरूप में (पंच प्राणों में एक अर्थात् प्राण अपान समान व्यान और उदान) अधोद्वादशान्त से ऊर्ध्वद्वादशान्त तक मध्यनाड़ी में ही आरोह करती रहती है और ऊर्ध्वद्वादशान्त से अधोद्वादशान्त तक अवरोह करती रहती है। इसी ऊर्ध्वद्वादशान्त पर अमाकला प्रतिष्ठित रहती है। यह अविनश्वर कला है। भगवान् शिव के मस्तक पर सदा वर्तमान यही कला सोमकला या अमृत कला कही जाती है। इसी कला से परमामृत आह्लाद दिलाने वाले स्वच्छन्द नाथ के लिए 'परमामृत लाभिने' विशेषण का प्रयोग किया गया है॥

(26)

नफ कोटि समावेश भरिताखिलसृष्टये।

नमः शक्तिशरीराय कोटि द्वितय सङ्गिने॥

अन्वय—न फ कोटि समावेश भरित अखिल सृष्टये शक्ति शरीराय कोटि द्वितय सङ्गिने नमः॥

शब्दार्थ—न फ कोटि—शक्तिस्वरूपा मालिनी के समावेश से ही शक्तिमान् शिव भरिताखिलसृष्टये—समस्त शक्तिस्वरूप जगत् को उत्पन्न करता है। अतएव इसे शक्ति शरीराय—शक्ति ही इसका शरीर है ऐसा कहा गया है। कोटि द्वितय संगिने—कोटि का अर्थ शक्ति है, शक्ति नामक दूसरा तत्त्व जिसके साथ अभिन्न है। नमः—ऐसे स्वच्छन्द भैरव को नमस्कार हो।

भाषानुवाद—शक्तिस्वरूपा मालिनी के समावेश से ही शक्तिमान् शिव शक्तिस्वरूप समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। शक्ति तत्त्व के साथ अभिन्न रहने वाले आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—नफ कोटि—नादि फान्ता मालिनी, आदि क्षान्ता मातृका। शैव दर्शन में 'मालिनी' और 'मातृका' क्रमशः शक्तिरूपता और

शक्तिमद्वरूपता के प्रतीक हैं। 'न' से 'फ' तक (नादि फान्ता) वर्ण समुदायरूपा मालिनी। वर्णमाला में पचास वर्ण हैं। उनमें सोलह स्वर (vowels) हैं और 34 व्यञ्जन (consonants) हैं। स्वरों का शैव दर्शन में दूसरा नाम 'बीज' है और व्यञ्जनों का दूसरा नाम 'योनि' है। बीजाक्षरों को शिव संज्ञा से भी पुकारा जाता है और योनि अक्षरों को शक्ति संज्ञा से भी पुकारा जाता है। मालिनी में वर्णमाला का जो क्रम है जैसे—अ आ इ ई, उ ऊ से क्ष तक वर्णमाला का जो क्रम है, मालिनी में उसका उल्लंघन है। मालिनी में 'बीज योनि' वर्णों का परस्पर मिश्रीभाव है अर्थात् शिव शक्ति का संघट्ट है। स्वरों में व्यंजन और व्यंजनों में स्वरों की घुसपैठ है। 'न' से आरम्भ हो कर 'फ' में मालिनी वर्ण समाप्त होते हैं। शेष वर्ष क्षुभित क्रम से (not with sequence) बीच में आ पड़े हैं जैसे मालिनी के 50 वर्णों का क्रम इस प्रकार है — 'न, ऋ, लृ, लृ, थ, च, ध, ई, ण, उ, ऊ, ब, क, ख, ग, घ, ङ, इ, अ, व, भ, य, उ, ढ, ठ, झ, ज, ज, र, ट, प, छ, ल, आ, स, अः, ह, ष, क्ष, म, श, अं, त, ए, ऐ, ओ, औ, द, फ' इति। मालिनी वह वर्ण राशि है कि जब स्वरवर्ण व्यञ्जन वर्णों के साथ अक्रम से मिश्रीभूत होके वर्ण समुदाय में प्रक्षोभ लाते हैं तब तथाविधा प्रक्षुब्धा वर्ण राशि मालिनी के नाम से पुकारी जाती है। यह शाम्भवोपाय की साधिका बनकर तत्क्षण भोगमोक्षफलदायिनी कही गई है। यह सारा विश्व इसी मालिनी नामक वर्णराशि का स्वरूप है। तंत्रालोक में कहा है—

बीज योनि समापत्ति विसर्गोदय सुन्दरा।

मालिनी हि पराशक्तिर्निर्णीता विश्वरूपिणी॥

तन्त्रसार में भी कहा है कि—मालिनी भगवती, मुख्य शाक्त रूप है जो बीजयोन्यात्मक संघट्ट से समस्त कामनाओं का

पूरक है। वास्तव में परावाणी का जो मध्यमा में प्रतिबिम्बन है वही मालिनी रूप है। अथवा शक्तिमान् से क्षोभित पराशक्ति ही मालिनी है। कहा है कि 'कां कां सिद्धिं न वितरेत् किं वा न्यूनं न पूरयेत्' अर्थात् कौन सी वह सिद्धि है जिसे यह नहीं देती, कौन सी वह कमी है जिसे यह पूर्ण नहीं करती। मालिनी में धातु 'मल्' है। मल् धारणे पहला अर्थ है। जयरथने तन्त्रालोक की टीका में लिखा है 'माल्यते धार्यते रुद्रैः आत्मतया स्वीक्रियते इति मालिनी' अर्थात् मालिनी इसीलिए इसे कहते हैं कि यह रुद्रों के द्वारा धारण की जाती है अर्थात् रुद्र इसे अपना ही स्वरूप समझते हैं। मल् धातु का दूसरा अर्थ है 'मल दाने' अर्थात् मालिनी शक्ति भुक्ति मुक्ति प्रदा है। मालिनी में कई टीकाकारों ने दो शब्दों का अर्थात् मा+अलिनी का संयोग मानकर इसका अर्थ 'नकारात्मकता की भ्रमरी' किया है। कई टीकाकारों ने मालिनी की व्याख्या इस प्रकार की है, मलते अन्तर् धत्ते विश्वं इति मालिनी।

(27)

महामोह मलाक्रान्त जीववर्गविबोधिने।

महेश्वराय जगतां नमः कारण बन्धवे॥

अन्वय—महा मोह मल आक्रान्त जीव वर्ग विबोधिने, जगतां, कारण बन्धवे, महेश्वराय नमः॥

शब्दार्थ—महा मोह—महान् अवर्णनीय मोहरूपी मल—अज्ञान से, आक्रान्त—अभिभूत बने हुए, जीव वर्ग—समस्त प्राणी वर्ग को, विबोधिने—जागृत करने वाले अर्थात् मोह निद्रा से उठाने वाले, जगतां—विश्व के जो, कारण—कारणभूत ब्रह्मा विष्णु महेश हैं उनके बन्धवे—अर्थात् समस्त ऐश्वर्यशाली उन्हें बनाकर उनके परमोपकारक, महेश्वराय—महान् ईश्वर स्वच्छन्द भैरव को नमः—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—महान् मोहरूप मल से परिपूर्ण प्राणि समुदाय को सत्ज्ञान प्रदान करने से जागृत करने वाले, संसार के कारणभूत त्रिदेवों को नाना ऐश्वर्यों से शोभित करने वाले महेश्वर स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—मल—मलं अज्ञानं इच्छन्ति संसारांकुर कारणम् अर्थात् मल अज्ञान का पर्याय है जो संसार में जन्म-मरणरूप चक्र में घसीटता है।

‘विबोधिने’ के स्थान पर अवबोधिने भी पाठान्तर है। अर्थ में कोई भेद नहीं।

‘कारण बन्धवे’ के साथ-साथ कई हस्तलिखित प्रतियों में ‘अकारण बन्धवे’ भी पाठ है। उस अवस्था में ‘अकारणबन्धवे’ का अर्थ है कि जो स्वच्छन्द भैरव सारे प्राणिमात्र के अकारण अर्थात् निर्व्याज सहायक हैं।

(28)

स्तेनोन्मूलन दक्षैक स्मृतये विश्वमूर्तये।

नमस्तेऽस्तु महादेवनाम्ने परस्वधात्मने॥

अन्वय—स्तेन उन्मूलन दक्ष एक स्मृतये विश्व मूर्तये परस्वधा आत्मने महादेव नाम्ने ते नमः अस्तु।

शब्दार्थ—स्तेन—चोरों का (विघ्नरूप), उन्मूलन—उखाड़ फेंकने में, दक्षैक स्मृतये—केवल स्मरणमात्र ही रामबाण है विश्व मूर्तये—जगन्मूर्तिरूप अर्थात् विश्वमय बने अथवा अपने स्वातन्त्र्य से विश्वाकार बने, महादेवनाम्ने—भगवान् महादेव नामधारी, पर स्वधात्मने—परम अमृत स्वरूप वाले, ते नमः अस्तु—आप स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम।

भाषानुवाद—मोहित करने वाले, विघ्नरूप चोरों को उखाड़ फेंकने में जिनका नाम स्मरणमात्र ही रामबाण का काम करता है,

विश्वमय, परम अमृत स्वरूप, महान् ऐश्वर्यशाली, उस स्वच्छन्द
भैरव को प्रणाम हो।

विशेष—महादेव में दो शब्द हैं महा+देव=महा—जो ब्रह्मा आदि महान्
कारणों का कारण है और जगत् की सृष्टि स्थिति आदि का भी
मूल हेतु है। देव—इसमें धातु 'दिवु' है जिसके क्रीडा, विजिगीषा,
द्युति, स्तुति, व्यवहार आदि अनेक अर्थ हैं। अर्थात् महादेव
सृष्टि आदि क्रीडा में तत्पर है (क्रीडा) महादेव सारे जगत् में
उत्कर्षशाली है (विजिगीषा), महादेव सारे लोक व्यवहार के
प्रवर्तक हैं। (व्यवहार), महादेव सबसे प्रकाशमान हैं (द्युति),
महादेव सबों के स्तोतव्य हैं (स्तुति)।

अतएव चिदानन्दघन होने के कारण परमामृत रूप हैं।

(29)

रुद्राविणे महावीर्य रुरुवंश विनाशिने।

रुद्राय द्राविताशेष बन्धनाय नमो नमः॥

अन्वय—रुग् द्राविणे, महावीर्य रुरु वंश विनाशिने, द्रावित अशेष बन्धनाय
रुद्राय नमो नमः॥

शब्दार्थ—रुग्—सारी आधि व्याधियों का द्राविणे—दिव्य औषधी होने से
नाश करने वाले, महावीर्य—जो अपने पराक्रम बल और लड़ने
के कौशल से अत्यन्त शक्तिशाली रुरुवंश—संकल्प विकल्पा-
त्मक वृत्तियों के उत्पत्तिस्थान मन का विनाशिने—विनाशक
अर्थात् वश में करने वाला इसीलिए द्रावित—धराशायी किये
थे, अशेष—सारे, बन्धनाय—आवाजाही के बन्धन, रुद्राय—
भगवान् रुद्र के लिए नमो नमः—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—सारी बीमारियों का शमन करने वाले, अत्यन्त शक्तिशाली,
संकल्प-विकल्पात्मक भावों के उत्पत्तिस्थान मन को वश में
करने वाले, जन्म-मरणरूप-सारे बन्धनों को ध्वस्त करने वाले
रुद्ररूप स्वच्छन्द को बार-बार नमस्कार हो।

विशेष—रुद्रः—संवित् में मन का रोधन करने से और पाशों का द्रावण करने से अनुग्रहपरक महेश का ही नाम रुद्र पड़ा है। रुद्र का वर्ण शुभ्र वर्ण है जो सत्त्व प्राधान्य का व्यंजक है।

रुरुवंश—पराक्रमी योद्धाओं की एक विशेष जाति थी जिसका सम्बन्ध रुरुवंश से था। अथवा रुरुवंश संकल्प विकल्पात्मक नाना विचित्र वृत्तियों का उत्पत्तिस्थान 'मन' का भी सूचक है।

(30)

द्रवत्पररसास्वाद चर्वणोद्युक्त शक्तये।

नमस्त्रिदश पूज्याय सर्वकारण हेतवे॥

अन्वय—द्रवत् पररस आस्वाद, चर्वण उद्युक्त शक्तये, सर्वकारण हेतवे त्रिदश पूज्याय नमः।

शब्दार्थ—द्रवत्—बहते हुए, पररस—सर्वश्रेष्ठ अमृत का जो, आस्वाद—मज़ा (taste) है, उसके चर्वण—आस्वादन चमत्कार में, उद्युक्त—सदा कमर कसे या सदा तत्पर, शक्तये—शक्तिवाले, सर्वकारण—सारे ब्रह्मा विष्णु आदि कारणों का भी हेतवे—कारणभूत, त्रिदश—देवताओं से, पूज्याय—पूजनीय स्वच्छन्द भैरव को नमः—नमस्कार हो।

भाषानुवाद—स्रवणशील सर्वश्रेष्ठ अमृत के आस्वादन चमत्कार में सदा तत्पर शक्ति वाले, ब्रह्मादि कारणों के भी कारणभूत, देवताओं से अर्चनीय, स्वच्छन्द भैरव के लिए नमस्कार हो।

विशेष—त्रिदश—देवताओं का पर्याय है। आमनाय शास्त्रों के जानने वाले इस बात की पुष्टि करते हैं कि त्रि+दश अर्थात् तेरह अमृत चरुओं से (रहस्य द्रव्यों से) इष्ट का पूजन होता है और अतः त्रिदश पूज्याय से तेरह रहस्य द्रव्यों से पूज्य, की ओर भी संकेत है।

रूपातीत नमस्तुभ्यं नमस्ते बहुरूपिणे।

त्र्यम्बकाय त्रिधामान्तश्चारिणेचित्रचक्षुषे॥

अन्वय—हे रूपातीत! नमः तुभ्यं, बहुरूपिणे, त्र्यम्बकाय, त्रिधाम अन्तः
चारिणे चित्रचक्षुषे नमः ते॥

शब्दार्थ—रूपातीत—हे तुर्यातीत! हे शुद्ध संविन्मय आत्मा! मालिनी-
विजयोत्तर तन्त्र में कहा है:—‘रूपातीतं तदेवाहुः यतोऽक्षाविषयं
परम्’ अर्थात् जो इन्द्रियों से अगोचर है उसे रूपातीत कहते हैं।
नमः तुभ्यं—मुझे नमस्कार हो। बहुरूपिणे—स्वच्छन्द नाथ का
वह शरीर जिसके मुख से आठ भैरव तन्त्रों का आविर्भाव
हुआ।

त्र्यम्बकाय—इच्छा ज्ञान क्रियाशक्तिरूपाय, अथवा ‘तिस्रो-
ऽम्बिका ज्ञानादयः शक्तयो यस्य अथवा त्रीणि अम्बकानि
नेत्राणि यस्य तस्मै त्र्यम्बकाय’—त्रिनेत्रधारी शिव को।

त्रिधाम—तीन धामों (स्थानों) में—‘सूर्यचन्द्रमसौवह्निः त्रिधाम
परिकीर्तिताः।’ अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि इन तीनों प्रकाशों
को त्रिधाम कहते हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति को भी त्रिधाम
कहते हैं। भूः लोक, भुवः लोक, स्वः लोक को भी त्रिधाम
कहते हैं। अन्तः चारिणे—इन तीनों धामों के अधिष्ठाता,
त्रिचक्षुषे—तीन आंखों को धारण करने वाले।

भाषानुवाद—हे तुर्यातीत! तुझे नमस्कार हो। बहुत सारे रूपों को धारण
करने वाले तुझे नमस्कार हो। इच्छा ज्ञान और क्रियाशक्तिरूप
तथा सूर्य चन्द्रमा और अग्निरूप तीन धामों के अधिष्ठाता,
त्रिनेत्रधारी स्वच्छन्द भैरव को प्रणाम।

विशेष—कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में ‘चित्रचक्षुषे’ के स्थान पर
‘चत्रिचक्षुषे’ भी पाठान्तर है। तात्पर्य एक जैसा है।

त्र्यम्बकं—स्वच्छन्द तन्त्र में कहा है—‘तिस्रो देव्यो यदा चैवं
नित्यमेवाभ्युपासते त्र्यम्बकस्तु तदा ज्ञेयः।’ अर्थात् इच्छा ज्ञान
क्रिया शक्तियां सदा इसकी उपासना करती हैं अतः इसे
त्र्यम्बक कहते हैं।

(32)

पेशलोपाय लभ्याय भक्तिभाजां महात्मनाम्।

दुर्लभाय मलाक्रान्त चेतसां तु नमो नमः।

अन्वय—भक्तिभाजां महात्मनां पेशल उपाय लभ्याय मल आक्रान्त
चेतसां दुर्लभाय नमो नमः।

शब्दार्थ—पेशल उपाय—शाम्भवोपाय का दूसरा नाम है। सरल उपाय
से लभ्याय—पाने योग्य, भक्तिभाजां—भक्तिमान्, महात्मनां—
महापुरुषों के लिए, मलाक्रान्त चेतसां—मल त्रय से आवेष्टित
चित्तवाले अर्थात् आणवमल, मायीयमल और कर्ममलों से
आवेष्टित मन वाले पुरुषों के लिए, दुर्लभाय—कठिनता से
प्राप्त होने योग्य, नमो नमः—बार-बार नमस्कार हो।

भाषानुवाद—भक्तिसम्पन्न साधकों के लिए सरल कष्टसाध्य उपायों के
बिनाही अर्थात् शाम्भव उपाय से प्राप्त होने योग्य, मलत्रय से
आवृत चित्तवाले देहधारियों के लिए दुर्लभ उस स्वच्छन्द भैरव
को बार-बार प्रणाम।

विशेष—शैव दर्शन में साधना मार्ग में तीन उपायों का चित्रण किया
गया है। वे हैं—शाम्भव उपाय, शाक्तोपाय और आणवोपाय।
इसके अतिरिक्त अनुपाय नामक चौथे उपाय की ओर भी
संकेत किया गया है जो स्वात्मनिष्ठ साधकों के लिए ग्राह्य है।
शाम्भव उपाय को पेशल उपाय की भी संज्ञा दी गई है। पेशल
उपाय का तात्पर्य है सरल उपाय। आचार्य उत्पलदेव ने
शिवस्तोत्रावली में इस उपाय की ओर संकेत करते हुए कहा
है कि—

नध्यायतो न जपतः स्यात् यस्याविधि पूर्वकम्।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम्॥

मलाक्रान्त—मल शब्द यहां आणवमल, मायीयमल और कर्ममल को सूचित करता है।

(33)

भवप्रदाय दुष्टानां भवाय भवभेदिने।

भव्यानां त्वन्मयानां तु सर्वदाय नमो नमः॥

अन्वय—दुष्टानां भवप्रदाय, भवाय भवभेदिने त्वत् मयानां भव्यानां तु सर्वदाय नमो नमः।

शब्दार्थ—दुष्टानां—चंचल मनोवृत्ति वाले तथा दुष्ट स्वभाव से अभिभूत हुए, प्राणियों को, भवप्रदाय—सांसारिक पाशों से जकड़ने वाले, भवाय—भव्य जनों को, भवभेदिने—जन्म-मरण से मुक्ति दिलाने वाले, त्वन्मयानां—भवन्मय स्वात्म विश्रान्ति सेवियों को, भव्यानां—तथा कुशल मार्ग को अपनाने वाले आरुरुक्षु साधकों को, सर्वदाय—सर्वस्व प्रदान करने वाले, नमो नमः—स्वच्छन्द भैरव को बार-बार प्रणाम।

भाषानुवाद—दुष्टों को बार-बार सांसारिक दुःख झेलने के लिए जन्म देने वाले, निर्मल हृदयवाले साधकों को जन्म मरण से मुक्ति दिलाने वाले, तथा ईश्वर भक्ति में लीन परमार्ग सेवी मुमुक्षु साधकों को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, आप स्वच्छन्द भैरव को बार-बार प्रणाम।

विशेष—भवः भवति—सर्वं अस्मात् जायते इति भवः—संसारः भवभेदिने—भवं संसारं भिनत्ति इति अर्थात् सृष्टि और संहार कर्ता।

भव्या—भूतिं अर्हन्ति इति भव्याः अर्थात् विभूति की जो कामना करते हैं उन्हें भव्य कहते हैं अर्थात् आरुरुक्षु=चढ़ने की इच्छा करने वाले। 'त्वन्मयानां' के स्थान पर 'तन्मयानां' भी पाठान्तर

है। त्वन्मयानां—जो आरूढ हो अर्थात् विश्रान्ति पद पर आसीन हो, सर्वदाय—सर्वज्ञता, तृप्तिः अनादिबोधः और स्वातन्त्र्यशक्ति-रूप पारमैश्वर्य को प्रदान करने वाले।

(34)

अणूनां मुक्तये घोर घोर संसारदायिने।

घोरातिघोरमूढानां तिरस्कर्त्रे नमो नमः॥

अन्वय—अणूनां मुक्तये, घोर-घोर संसार दायिने, घोर अतिघोर मूढानां तिरस्कर्त्रे नमो नमः।

शब्दार्थ—अणूनां—देह, प्राण, पुर्यष्टक आदि अभिमान रूप अज्ञान से परिपूर्ण बद्ध आत्माओं की, मुक्तये—मुक्ति के लिये, घोर-घोर—अत्यन्त भयानक, संसारदायिने—संसार को देने वाले अथवा संसार का खण्डन करने वाले, 'दायिने' में जब 'दा' दाने धातु को लेंगे तो संसार देने वाला अर्थ दायिने का होगा। जब 'दायिने' में 'दो अवखण्डने' धातु को लेंगे तो दायिने का अर्थ संसार का खण्डन करने वाला होगा। घोरातिघोर मूढानां—घोर अति घोर तथा मूढ़ या राजस भाव, अति राजसभाव, तथा तामस भाव का, तिरस्कर्त्रे—विनाश करने वाले, नमो-नमः—स्वच्छन्द भैरव को बार-बार प्रणाम।

भाषानुवाद—अज्ञानावृत बद्ध आत्माओं की भी मुक्ति दिलाने के लिए मुक्ति हेतु अत्यन्त घोर संसार का खण्डन करने वाले तथा घोर अतिघोर और मूढ़ भाव अर्थात् राजस, अतिराजस तथा तापसभाव को विनाश करने में तत्पर स्वच्छन्द भैरव के लिए बार-बार प्रणाम हो।

विशेष—अणूनां—बद्ध जीव को अणु कहते हैं। आणव मल से ग्रस्त होने से ही इसे अणु कहते हैं। घोर—घोर भाव राजसभाव का सूचक है, अतिघोर—अतिघोरभाव अति राजस भाव का सूचक

है, मूढ़—मूढ़ भाव तामस भाव का सूचक है।



सर्वकारण कलाप कल्पितो-

ल्लास संकुल समाधि विष्टराम्।

हार्दकोकनद संस्थितामपि

तां प्रणौमि शिववल्लभामजाम्॥

अन्वय—सर्वकारण कलाप कल्पित, उल्लास संकुल समाधि विष्टरां, हार्द कोकनद संस्थितां अपि, तां अजां शिववल्लभां प्रणौमि॥

शब्दार्थ—तां—उसको, अजां—न जायते इति अजा अर्थात् जो उत्पत्तिरहित है नित्या है, शिववल्लभा—शिव की प्राणप्रिया है, शक्ति सुन्दरी है, प्रणौमि—प्रणाम करता हूँ। हार्द कोकनद—उपासकों के हृदयरूपी कमल में संस्थितां—उहरी हुई अपि—अपि यहां च के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् सारे साधक जिसका अपने हृदय में ध्यान करते हैं और सर्व—सारे, कारण—ब्रह्मा आदि कारणों का, (जो) (ब्रह्मा विष्णु महेश जो कारणत्रय कहे गये हैं) कलापः—समूह है (उससे) कल्पित—प्रादुर्भूत हुआ है (जो), उल्लास—स्वात्म चमत्कार रूप आनन्द (उससे) संकुल—परिपूर्ण है (जो उनकी) समाधिः—परशिव समावेश, (वही) विष्टरां—आसन है अर्थात् विश्रान्ति स्थान है (जिसका) तां—उस, अपने संवेदन से ही साक्षात्करणीय शिववल्लभां—शक्ति सुन्दरी शिव प्रिया को प्रणौमि—प्रणाम करता हूँ।

भाषानुवाद—भक्तों के हृदयरूपी कमल में विराजमान और ब्रह्मा विष्णु महेश आदि त्रिकारणों से आविर्भूत स्वात्मचमत्कार रूप आनन्द से परिपूर्ण, परशिव समावेश ही जिसका आसन है अर्थात् विश्रान्ति स्थान है, उस जन्महीना शक्तिसुन्दरी शिवप्रिया को प्रणाम करता हूँ।

विशेष—अजां—अ—अनुत्तर से विकसित आनन्दरूप इच्छा की ओर भी अजा शब्द संकेत करता है।

हार्द कोकनद—संकोच विकास के कारण हृदय को कमल की संज्ञा दी है। कारण से त्रिकारणों की ओर संकेत है समाधि से परशिव समावेश अभिप्रेत है।

सर्वजन्तु हृदयाब्जमण्डलो-

उद्भूत भाव मधुपान लम्पटाम्।

वर्णभेद विभवान्तरस्थितां

तां प्रणौमि शिववल्लभामजाम्॥

अन्वय—सर्व जन्तु हृदय अब्ज मण्डल उद्भूत भाव मधु पान लम्पटां, वर्णभेद विभव अन्तर स्थितां, तां अजां शिववल्लभां प्रणौमि॥

शब्दार्थ—सर्व जन्तु—आ ब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं यत् किञ्चित् सचराचरम् तत् सर्वजन्तु इति निगद्यते। अर्थात् ब्रह्मा से लेकर स्थावर जगत् तक जो कुछ चर अचर विश्व है उसे 'सर्व जन्तु' कहते हैं। (उनके) हृदय—हृदयरूपी, अब्जमण्डल—कमल समूहों में, उद्भूत—लगातार स्पन्दन होने से उत्पन्न, भाव—नाना वैचित्र्य पूर्ण संकल्प विकलात्मक भावरूपी मधुपान—मद्यपान में लम्पटां—(अनेक प्रकार के विकल्पजालों के) आस्वादन में तत्पर, तथा वर्ण भेद—'अ' से 'क्ष' तक वर्णों का जो भेद है (वही) विभव—ऐश्वर्य है। अन्तरस्थितां—उस में सर्वरूप से व्यापिनी मातृकारूपिणी तां—उस, अजां—उत्पत्तिहीन, शिववल्लभां—शक्तिसुन्दरी को प्रणौमि—प्रणाम करता हूँ।

भाषानुवाद—ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त सारा प्राणिवर्ग, जिस शक्तिसुन्दरी के हृदय कमल में सतत स्पन्दनात्मक क्रिया के माध्यम से, नाना वैचित्र्यपूर्ण भाव रूपी मधुपान करने में लगा रहता है तथा 'अ' से 'क्ष' तक पचास वर्ण शरीर के भेदात्मक ऐश्वर्य में जो व्याप्त है उस मातृका रूपिणी अजा शक्तिसुन्दरी को मैं

प्रणाम करता हूँ।

विशेष—मालिनी के विषय में तो पूर्व में कुछ प्रकाश डाला गया।
मातृका जो आदिक्षान्ता है अर्थात् 'अ' से 'क्ष' तक वर्ण
समुदाय की मातृका है यह पंचाशत वर्ण विग्रहा है। समस्त
प्राणिवर्ग की जीवभूता है और सकल मन्त्र माता अर्थात् साढ़े
तीन करोड़ मन्त्रों की जननी है। इसी को अक्षमा भी कहते हैं।

इत्येवं स्तोत्रराजेशं महाभैरव भाषितम्।

योगिनीनां परं सारं नदद्याद्यस्य कस्यचित्॥

अन्वय—इति एवं महाभैरवभाषितं योगिनीनां परं सारं, स्तोत्र राजेशं,
यस्य कस्यचित् नदद्यात्।

भाषानुवाद—इस प्रकार यह बहुरूप गर्भस्तोत्र, स्तोत्रराज है अर्थात् सारे
स्तोत्रों में सर्वोत्कृष्ट है। यह योगिनियों का सर्वोत्तम सारभूत है,
इसे स्वयं महाभैरव ने कहा है। अतः यह किसी ऐसे तैसे
व्यक्ति को सुनाना न चाहिए नाही पढ़ाना चाहिए।

विशेष—महाभैरव परमशिव का ही अपर पर्याय है। योगिनी—शिव
शक्ति समावेश से आविष्ट स्त्री साधिकायें।

अदीक्षिते शठे क्रूरे निःसत्ये शुचिवर्जिते।

नास्तिके च खले मूर्खे प्रमत्ते विप्लुतौजसे॥

गुरुशास्त्र सदाचार दूषके कलहप्रिये।

निन्दके जम्भके क्षुद्रे समयघ्ने च दाम्भिके॥

दाक्षिण्यरहिते पापे धर्महीने च गर्विते।

भुक्तियुक्ते प्रदातव्यं न देयं परदीक्षिते॥

अन्वय सरल है।

शब्दार्थ—अदीक्षिते—शिवयोग में जिसकी दीक्षा नहीं हुई हो। शठे—जो
शठ (ठग) हो, क्रूर—कठोर स्वभाव का, निःसत्ये—मिथ्याभाषी
हो, शुचिवर्जिते—अपवित्र हो, नास्तिके—ईश्वर को न मानने

वाला हो, खले—दुष्ट, मूर्ख—बेवकूफ, प्रमत्ते—प्रमादी, विप्लुतौजसे—शिथिल आचार वाला हो, गुरुशास्त्र सदाचार दूषके—गुरु, शास्त्र तथा सदाचार की निन्दा करने वाला हो, कलहप्रिये झगड़ालू हो, निन्दके—निन्दाकरने वाला, जम्भके—(जंभाई करने वाला) आलसी, क्षुद्रे—नीच, समयघ्ने—प्रतिज्ञा भंग करने वाले, दाम्भिके—दम्भ करने वाले, दाक्षिण्यरहिते—चतुरता से रहित, पापे—पापी, धर्महीने—अपने धर्म पर न चलने वाले, गर्विते—अभिमानी, परदीक्षिते—किसी दूसरे सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्ति को, न देयं—यह स्तोत्रराज न पढ़ाना चाहिए, न सुनाना चाहिए। भक्तियुक्ते प्रदातव्यं—यह केवल उसी को देना चाहिए जो भक्ति से युक्त हो।

भाषानुवाद—शिवयोग में जिसकी दीक्षा न हुई हो, जो शठ कठोर स्वभाव का, मिथ्याभाषी, अपवित्र, नास्तिक, दुष्ट, बेसमझ, प्रमादी, शिथिल आचार वाला, झगड़ालू, आलसी, नीच, प्रतिज्ञा तोड़ने वाला, दम्भ करने वाला, चतुरता से रहित, पापी, अपने धर्म पर न चलने वाला, अभिमानी और अन्य सम्प्रदाय में दीक्षित व्यक्ति को यह स्तोत्रराज न सुनाना चाहिए न पढ़ाना चाहिए अपितु यह केवल भक्ति विभूषित साधक को देना चाहिए।

पशूनां सन्निधौ देवि! नोच्चार्यं सर्वथा क्वचित्।

अस्यैव स्मृतिमात्रेण विघ्नाः नश्यन्त्यनेकशः॥

अन्वय—हे देवि! पशूनां सन्निधौ क्वचित् सर्वथा न उच्चार्यं। अस्य स्मृतिमात्रेण अनेकशः विघ्नाः नश्यन्ति।

शब्दार्थ—हे देवि! पशूनां सन्निधौ—स्वात्म ज्ञानहीन व्यक्तियों के सामने, क्वचित्—कभी भी, सर्वथा न उच्चार्यं—इस स्तोत्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए। अस्य स्मृतिमात्रेण—इस स्तोत्र के स्मरण मात्र से ही अनेकशः विघ्नाः नश्यन्ति—प्रत्येक प्रकार के

सैंकड़ों विघ्न नष्ट होते हैं।

भाषानुवाद—हे देवि! अज्ञानी व्यक्तियों के सामने इस स्तोत्र का कभी पाठ नहीं करना चाहिए। इस स्तोत्र के केवल स्मरण करने से ही प्रत्येक प्रकार के विघ्न नष्ट होते हैं।

गुह्यकाः यातुधानश्च, वेताला राक्षसादयः।

डाकिन्यश्च पिशाचाश्च, क्रूर सत्त्वाश्च पूतनाः॥

नश्यन्ति सर्वे पठित स्तोत्रस्यास्य प्रभावतः।

खेचरी भूचरी चैव डाकिनी शाकिनी तथा॥

अन्वय—गुह्यकाः, यातुधानाः च वेताला राक्षसादयः, डाकिन्यः च पिशाचाः च क्रूरसत्त्वाः च पूतनाः खेचरी, भूचरी च एव डाकिनी तथा शाकिनी सर्वे अस्य पठित स्तोत्रस्य प्रभावतः नश्यन्ति।

शब्दार्थ—गुह्यकाः—यक्षविशेष, च—और, यातुधानाः राक्षस, वेतालाः—वेताल, राक्षसादयः—अन्य राक्षस आदि, डाकिन्यः—रूप परिवर्तनशील विशेष शक्तियां च—और पिशाचाः—पिशाच, क्रूर सत्त्वाः—भयानक जीव, पूतनाः—पूतना आदि राक्षसियाँ, खेचरी—आकाश में चरने वाली, भूचरी—स्थल पर चरने वाली, शाकिनी—रूप परिवर्तन करके पशुशोणित (रक्त) को खींचने वाली, सर्वे (सारी शक्तियाँ), पठित स्तोत्रस्य अस्य प्रभावतः—इस स्तोत्र पाठ के प्रभाव से, नश्यन्ति—प्रभावहीन हो जाती हैं।

भाषानुवाद—इस स्तोत्र पाठ के प्रभाव से, यक्षविशेष, राक्षस, वेताल डाकिनियाँ, पिशाच, भयानक जीव, पूतना आदि राक्षसियाँ, गगनचर, स्थलचर शाकिनी भयानक शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

ये चान्ये बहुधा भूता दुष्टसत्त्वा भयानकाः।

व्याधि दुर्भिक्ष दौर्भाग्य मारी मोह विषादयः॥

गजव्याघ्रादयो दुष्टाः पलायन्ते दिशो दश।

सर्वे दुष्टाः प्रणश्यन्ति चेत्याज्ञा पारमेश्वरी॥

अन्वय—ये च अन्ये भयानकाः दुष्टसत्त्वा बहुधा भूता व्याधिः दुर्भिक्ष, दौर्भाग्य, मारी, मोह विषादयः (तथा) गज व्याघ्र आदि सर्वे दुष्टाः (तेऽपि) दश दिशो पलायन्ते इति च पारमेश्वरी आज्ञा।

शब्दार्थ—ये च—और जो, अन्ये—दूसरे प्रकार के, भयानकाः दुष्ट सत्त्वा—भयंकर दुष्ट जीव हैं, बहुधाभूताः—अनेक प्रकार के प्राणी हैं, व्याधि—बीमारी, दुर्भिक्ष—अकाल, दौर्भाग्य—दुर्भाग्य, मारी—महामारी, विषादयः—विषप्रयोग और गज—हाथी, व्याघ्र—चीता आदि, जो सर्वे दुष्टाः—सारे नीच प्रकृति के हैं, वे भी दशदिशो—दसों दिशाओं में पलायन्ते—भाग जाते हैं। इति च—इस प्रकार की यह, पारमेश्वरी आज्ञा—परमेश्वर की आज्ञा है।

भाषानुवाद—इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के जो भी भयंकर जीव और प्राणी हैं, और भी भयानक बीमारियों, अकाल, सूखों, दुर्भाग्य, महामारी, विष प्रयोग आदि तथा हाथी चीता आदि सारे नीच प्रकृति के पशु—इन स्तोत्र पाठ के प्रभाव से दसों दिशाओं में भाग जाते हैं। यह साधारण कथन नहीं अपितु यह परमेश्वर का निर्देश है।

॥ इति श्रीललितस्वच्छन्दे बहुरूपगर्भस्तोत्रं समाप्तम् ॥



BOOKS PUBLISHED BY ISHWAR ASHRAM TRUST
FOUNDED BY SHRI. ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMANJOO MAHARAJ

Author Swami Lakshmanjoo

ENGLISH

- Lectures on Practice and Discipline in Kashmir Shaivism
- Kashmir Shaivism (The Secret Supreme)
- Siva Sutras
- Self Realization in Kashmir Shaivism
- Sri Vatulanatha Sutrani
- Kundalini Vijnana Rahaysam
- Abhinavagupta's Bodhapancadashika (with 1 Audio CD)
- Bhagavadgita Abhinavagupta's Sangraha Shlokas (with 1 Audio CD)
- Kshemaraja's Parapraveshika (with 2 Audio CDS)

HINDI/SANSKRIT

- Abhinavagupta's Srimad Bhagvadgita (Sanskrit)
- Samba Pancashika
- Pancastavi with Hindi translation
- Kramanayapradipika
- Shivastotravali
- Snan Sandyopasana Vidhi with Gurugita manuscript in Sanskrit
- Stuti Candrika
- Amriteshwar Bhairav Mahimnastotram
- Kashmir Shaiva Darshan
- Yam & Niyam (Sanskrit/Hindi)
- Trik Shastra Rahasya Prakriya (manuscript with Hindi translation)
- Tantraloka (First Ahnika) manuscript with Hindi translation